"हमारे आद्य पुरुष"

लेखक :

वेदान्त वाचस्पति

गो.वा. शास्त्री रमणलाल ज्येष्ठाराम जोषी (उमरेठवाळा)

: संपादक :

"ब्रह्मर्षिरत्न" निरंजन शास्त्री उमरेठवाला

॥ श्री हरिः ॥

‘‘हमारे आद्य पुरुष’’

(श्रीमद् वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजी)

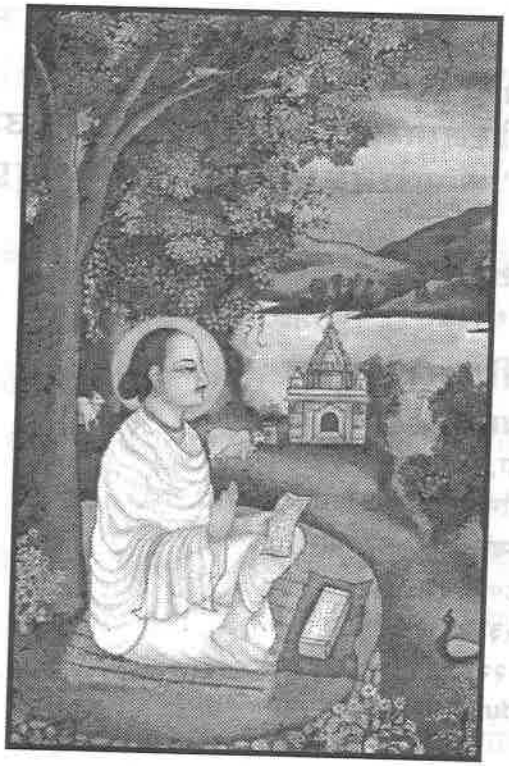

लेखक :

वेदान्त वाचस्पति

गो.वा. शास्त्री रमणलाल ज्येष्ठाराम जोषी

(उमरेठवाला)

: संपादक :

‘‘ब्रह्मर्षिरत्न’’ निरंजन शास्त्री उमरेठवाला

॥ श्री हरि: ॥

"हमारे आद्य पुरुष"

(श्रीमद् वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजी)

लेखक :
वेदान्त वाचस्पति
गो.वा. शास्त्री रमणलाल ज्येष्ठाराम जोशी (उमरेठवाळा)
भाषा : गुजराती "आपणा मूल पुरुष" से "हमारे आद्य पुरुष"

संपादक / प्रकाशक :
"ब्रह्मर्षिरत्न"
निरंजन शास्त्री उमरेठवाळा
(भागवत व्याख्याता)
१, देवकृपा १ला मंजला, स्टार अेपार्टमेन्ट के बगलमें,
सीटी बेंक के सामने, सीम्पोली सीग्नल के पास, अेस वी. रोड,
बोरीवली (पश्चिम) मुम्बइ-४०० ०९२. भारत
दूरभाष : ९१-२२-२८०५१७३९
मोबाइल : ९८२०४६५३३२
फेकस : C/o. (९१-२२) २८६४०८७६
E-mail : krushnadutt@hot-mail.com

प्रथम आवृत्ति ● प्रत : ५००
न्योछावर : 75

दि. ३-६-२००६
वि.सं. २०६२ जेठ सुद-७

मुद्रक :
पुष्टि दर्शन
वडोदरा.

प्रकाशक के दो शब्द

॥ श्री हरि: ॥

मेरे जन्मके समय मेरे गो.वा. पूज्य पिताश्री रमणलाल शास्त्रीजीने महाप्रभुश्रीवल्लभाचार्यजीका चरित्र बीस प्रकरणोंमें लिखा था। जो उस समयमें नवीन शैलीयुक्त प्रतीत होता था जिसका प्रमाण "आपणा मूल पुरुष" की पूर्व पिठिकामें आचार्यो व साहित्यकारों के अभिप्रायसे स्पष्ट होता है। उसकी कइ आवृत्तियां प्रकाशित हुइ।

पितृऋण अदा करने के लिये यह श्रेष्ठ प्रकारोमेंसे एक प्रकार है इसी मान्यताको स्वीकारते हुए हिन्दीमें "हमारे आद्य पुरुष" प्रकाशित किया है।

श्री जमनादास दत्ताणी परिवार, श्री प्रभुदास गणात्रा परिवार, चि.सौ. श्री कुसुमबहेन, सौ. श्री रेखाबहेन सेजपाल, श्री अमृतलालभाई परिवार, श्री वीणाबहेन ठकरार, श्री वनिताबहेन राडिया आदिका आर्थिक सहयोग मीला।

प्रिन्टींग के लिये श्री पुष्टि दर्शन श्री प.भ. परेशभाइ देसाइ, भाषान्तर के लिये आदरणीय साहित्यप्रेमी मु. श्री ललितभाइ बक्षी जिन्होंने प्रुफ रीडींगमें भी सहयोग किया है। प्रेसके कर्मचारी गण एवं प्रत्यक्ष परोक्ष सहयोग देनेवाले प्रत्येक का में ऋण स्वीकार करता हुं।

आशीर्वाद के लिय पू. श्री १०८ श्री चन्द्रगोपालजी महाराज, पू. गो. श्री १०८श्री द्वारकेशलालजी महाराजश्री-बडौदा, पू.गो.श्री १०८ श्री वागिशकुमारजी महोदयश्री एवं आ. श्री दिनकरभाइ जोशी का ऋणी हुं।

त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

बोरीवली-मुम्बई
ता. २३-५-२००६
मो. ०९८२०४६५३३२,
फोन : ९१-२२-२८०५१७३९

भवदीय
निरंजन शास्त्रीका
सादर भगवत्स्मरण

॥ श्री हरि: ॥

गो.वा. पूज्य श्री शास्त्रीजी रमणलाल ज्येष्ठाराम उमरेठवाले

ज्योतिष-भागवत भूषण, शुद्धाद्वैत रत्न, काव्य-व्याखान विशारद,
विद्या-व्याख्यान-वेदान्त-वाचस्पति, आदर्श अध्यापक

(संक्षिप्त परिचय)

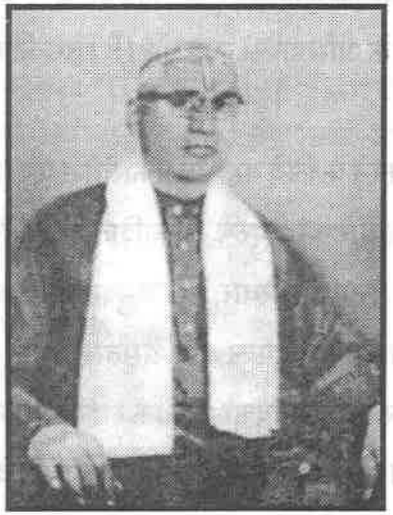

जन्म स्थल : पाटण-गुजरात-भारत
जन्म : इ.स. १९१० श्रावण शुक्ल १५ वि.सं. १९६५
गो.वा. : इ.स. २००० मार्गशीर्ष कृष्ण-१
ज्ञाति : श्री गोड विप्र माता : श्री प्रसन्नबा
पिता : श्री ज्येष्ठाराम हरिजीवन शास्त्री

अंग्रेजी अभ्यास : इंग्लीश माध्यमसे नवमी कक्षा तक । किन्तु पिताजीकी इच्छानुसार अंग्रेजीका व्यवहार अपेक्षित ज्ञान प्राप्ति के बाद संस्कृतका अध्ययन प्रारंभ किया।

अपने पितृ चरणकी छत्र छायामें, नडीआद श्री गो. अनिरुद्धलालजी के सान्निध्यमें, श्री हरिशंकर ओमकारजी शास्त्रीजी व विशिष्ट विद्वानोंके द्वारा, एवं श्री राजकीय संस्कृत पाठशाळा पेटलाद में गुजरातमें अभ्यास कीया एवं विभिन्न विषयोंकी पदवीयां व चन्द्रक प्राप्त किये। इ.स. १९४२ तक में आपश्रीने हालोल की, पेटलाद व डभोई में पुष्टिमार्गीय पाठशालाओंमें छात्रोको अध्ययन करवाया।

इ.स. १९४० से पत्रकारत्वका प्रारंभ कीया एवं इ.स. १९४२ से १९५० तक उमरेठ में पुष्टिमार्गीय पाठशालामें अध्यापकके स्वरुपमें अध्ययन करवाया।

गो. श्री कृष्णजीवनजी महाराजश्री ने शास्त्रीजीको ''वैष्णव परिषद'' के प्रचार प्रसार सेवामां नियुक्त किये गुजरात सौराष्ट्रमें कइ शाखाओंका स्थापन किया।

इ.स. १९५३में गीता पाठशाला-लक्ष्मीनारायण मन्दिर कांदीवली मुंम्बई में अध्यापक पदपें नियुक्ति हुई। इ.स. १९५४ से इ.स. १९६७ तक भगवद् धर्म पाठशाला, गीताहोल, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, माधवबाग सी.पी.टेन्क, मुंम्बई में व्याख्यातके रुपमें नियुक्ति रही। इ.स. १९६९ से इ.स. २००० तक उत्तरावस्थामें गौ सेवाका व्रत पूर्वक उमरेठमें निवास किया.

आपश्रीने भारतमें एवं श्रीलंका, आफ्रिका, सींगापोर, मलेशिया, अमेरीका एवं केनेडा का प्रवास किया व ७५० से अधिक श्रीमद् भागवत पुराण आदिकी सप्ताहे की।

प्रवृत्तियां : सर्वपूर्वकालिन प्रवृत्तियां।
मंत्रीश्री : भक्तकविश्वर श्री दयाराम स्मारक समिति-डभोइ
अध्यक्ष : दयाराम साहित्य सभा-डभोई मंत्री : ग्राम सेवा समाज-उमरेठ
अध्यक्ष : विद्वत्सभा, उमरेठ, प्रमुख-वक्तृत्व सभा-डभोइ
ट्रस्टी : संस्कार केन्द्र, उमरेठ
ट्रस्टी : समाज सेवा संस्कार केन्द्र, उमरेठ
मंत्री : वैष्णव परिषद-मुंम्बइ २
अध्यक्ष : बाल विकास परिवार-गुजरात प्रदेश
ट्रस्टी : स्वाध्याय सेवा ट्रस्ट एवं गौ शाला-उमरेठ

प्रकट साहित्य :

(१) ''आपणा मूल पुरुष'' गुजराती / अब हिन्दी आवृत्ति
(२) हिन्दी संस्करण ''हमारे आद्य पुरुष'' श्री वल्लभाचार्य चरित्र सिद्धान्त एवं कवन
(३) वैष्णव मार्गदर्शिका (अप्राप्य)
(४) श्रीमद् भागवत रस संग्रह (अप्राप्य)
(५) पुष्टिमार्गना ५०० वर्ष (के लेखक) (अप्राप्य)

आपश्रीको कइ चन्द्रक एवं सन्मानपत्र मीले थे। कथा कर्मकांड श्रेष्ठता कारण गुजरात सरकारने मरणोत्तर सन्मान किया था। अस्तु।

॥ श्री हरि: ॥

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी
(संक्षिप्त जीवनी)

निरंजन शास्त्री उमरेठवाला

ज्ञाति : विप्र. गोत्र : भारद्वाज. वेद : कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा.

कुलदेव : श्री गोपालकृष्ण. कुलदेवी - रेणुका

निवासप्रदेश : परापूर्वसे निवास आन्ध्रप्रदेश में व्योमस्तंभ पर्वत निकट कृष्णानदीके तटपर काकुंभकर गांवसे काकरवाड में जाकर निवास किया था।

पूर्वज : सोमयाजी दीक्षित श्री गोविन्दाचार्यजीका परिवार

पितामह : सोमयाजी दीक्षित श्री बालंभट्टजी चाचाजी : श्री जनार्दन भट्टजी

पिताजी : सोमयाजी दीक्षित श्री लक्ष्मणभट्टजी

माताजी : श्री यल्लभागारुजी एवं श्री इल्लमागारुजी, (महा) प्रभुजी की माताजी श्री इल्लमागारुजी है)

नानाजी : विद्यानगर के राज्यपुरोहित काश्यप गोत्रीय श्री सुर्शमाजी.

परिवार में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के भाइ बहन :

(१) श्री रामकृष्ण (२) श्री वल्लभ (३) श्री रामचन्द्र (४) श्री सरस्वती एवं (५) श्री सुभद्रा

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी का प्राकट्यस्थाल : भारत में जनपद छत्तीसगढ - जीला रायपुर गाम वर्तमान में ''चंपारण्य'' नाम से सुविदित है ।

जन्म संवत : विक्रमाब्द १५३५ (व्रज वैशाख - गुर्जर) चैत्र कृष्ण ११ रविवार (एक मत से विक्रमाब्द १५२९) (एक संशोधन के अनुसार दि. २९-३-१४७८)

नाम : देवनाम कृष्णप्रसाद, मासनाम जनार्दन, नक्षत्रनाम श्राविष्ठ किन्तु पिताजीने अत्यंत प्रिय होने के कारण इस पुत्र का नाम ''वल्लभ'' रखा था ।

उपनयन संस्कार :

एकमतानुसार पांच मे वर्ष में (दूसरा मतानुसार आठवें वर्ष में) विक्रमाब्द १५४० चैत्र कृष्ण ९ के मंगलदिन उपनयन संस्कार सपन्न हुआ - गायत्री मंत्र, गोपालमंत्र, अष्टाक्षरमंत्र दीक्षा अथर्ववेद व उपनिषदीय ज्ञान पितृचरण श्री लक्ष्मण भट्टजी द्वारा प्राप्त हुआ था इस लिये श्री लक्ष्मण भट्टजी पिताजीके अलावा विद्यागुरुजी व मंत्रदीक्षागुरुजी भी थे ।

विद्यागुरुजी :

श्री विष्णुचित उपाध्याय, श्री तिरुमलजी दीक्षित, श्री नारायण दीक्षित, श्री माधवेन्द्र यति, श्री माधवानन्द यति, अध्ययन काल में वाराणसी में पंडितों के द्वारा आपश्रीको ''बालसरस्वती'' व ''वाक्पति'' पदवीयां प्राप्त हुई थी ।

पितृचरण का लीला प्रवेश :

विक्रमाब्द १५४६ चैत्र कृष्ण ९ के दिन श्री लक्ष्मण भट्टजीने श्री लक्ष्मणबालाजीके शृंगार के समय श्री विग्रह में प्रवेश किया था । उस समय उनकी एक पत्नी श्रीयल्लभागारुजी सती हुइ थी ।

''आचार्य'' पदवी एवं ''कनकाभिषेक'' :

राजा कृष्णदेव के वहाँ विद्यानगर (विजयनगर) में सर्वसम्प्रदाय के विद्वानोके साथ शास्त्रार्थ में जुडे, अपने पक्षको प्रतिपादित किया विद्वानोने - आचार्योने उसमतका स्वीकार किया सर्वानुमतिसे श्री वल्लभजीको **''अखंड भूमंडलाचार्यवर्य महाप्रभु श्रीमदाचार्य''** पदवी प्रदान हुई तथा चौदह हजार सुवर्णमुद्राओसे ''कनकाभिषेक'' हुआ । महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजीने उसमेसे केवल सात स्वर्ण मुद्राओका स्वीकार किया शेष स्वर्णमुद्रओको चार भागमें विभाजित की। विक्रमाब्द १५६५ फाल्गुनकृष्ण २ का यह दिन था उस दिन राजाकृष्णदेव एवं परिवार महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के शरण आया व सेवक बना ।

भारत परिभ्रमण :

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजीने १८ वर्ष तक भारतभूमंडल की तीनबार चलकर परिक्रमा की थी जिस में स्वभू, स्वयंभू, विभु एवं शंभु जैसे कतिपय शिष्यों को सेवार्थे साथ में रखे थे ।

यात्रा में महाप्रभुजी प्राय: गांवके बाहर हि मुकाम करते थे जहाँ मुकाम किया इन स्थानो को पुष्टिसम्प्रदाय में ''बेठकजी'' नामसे सुप्रसिद्ध है जिन की संख्या ८४ मानी गइ है वहाँ बिराजकर श्री महाप्रभुजीने यथावकाश श्रीमद् भागवत, श्री वेदनारायण, श्री वाल्मीकि रामायण पारायण किये थे ।

प.भ. सर्वश्री दामोदरदास हरसानी (दमला), कृष्णदास मेघन, दामोदरदास संभलबाले, पद्मनाभदास, राणा व्यास, माधवभट्ट काश्मीरी, चाचा हरिवंश, अष्टसखा (कीर्तनकार) में से सूरदास आदिचार महाप्रभुजीके निकट में थे इनके वार्ता प्रसंगोको ''८४ वैष्णव'' वार्ता प्रसंग कहते हे इनके अलावा आपश्रीके असंख्य सेवक थे । काश्मीरका आपका प्रवास नहि हुआ ऐसा प्रतीत होता है ।

प्रथम यात्रा में श्री जगन्नाथपुरी में महत्वपूर्ण चार निर्णय आपने बताये थे । दामोदरदासजी को दीक्षा दीथी व अपने शिष्यों को सिद्धान्त ज्ञान दीया था ।

दूसरीयात्रान्तर्गत पंढरपुरमें ''श्री विठ्ठलनाथ प्रभु'' ने आपको विवाह की आज्ञा की, फलरुप विक्रमाब्द १५५८ आषाढ शुकल ५ के दिन श्री महालक्ष्मीजीकी साथ विवाह सम्पन्न हुआ ।

(वि. सं. १५५५ में श्रीनाथजी के विशाल मन्दिर निर्माण प्रारंभ हुआ जो मन्दिर २० वर्ष बाद तैयार हुआ)

तृतीय यात्रा का प्रारंभ वाराणसीसे हुआ । भगवदाज्ञासे व्रज में पधारे व पुष्टिमार्गीय क्रमसे सेवाका विस्तार किया । सेवा में साचोरा, गिरनारा व औदीच्य विप्रवर्ग की नियुक्ति की थी ।

पुष्टिमार्ग में अष्टाक्षर मंत्र - नामदीक्षा एवं, ब्रह्मसंबंध दीक्षा नामक दो दीक्षायें है। (आपने अपने कतिपय सेवको को नाम दीक्षा देनेका अधिकार दिया था)

पुत्र प्राकट्य : विक्रमाब्द १५६७ (व्रज आश्विन - गुर्जर) भाद्रपद कृष्ण १२ को ज्येष्ठपुत्र श्री गोपीनाथजी का व विक्रमाब्द १५७२ (व्रजपौष, गुर्जर) मार्गशीर्ष कृष्ण ९ शुक्रवार दिनांक ३० नवम्बर १५१५ के दिन श्री विठ्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ ।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा साहित्यप्रदान :

आपश्रीने कइ ग्रन्थ लिखें है जिन में से ३७के नाम प्राप्त होते है जिसमें कतिपय के नाम है जेसे कि अणुभाष्य, तीन विभागमें निबन्ध, सुबोधिनी, षोडशग्रन्थ, पत्रावलंबन, पूर्वमीमांसाभाष्य, मीमांसाकारिकायें, पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम त्रिविधनामावली, अनेक अष्टक, गायत्रीभाष्य आदि - महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजीकी वेदान्त विचारधारा को ''शुद्धाद्वैत वेदान्त'' ''ब्रह्मवाद'' कहते है।

संन्यास एवं आसुर व्यामोहलीला :

पूर्णानन्द नामसे आपने संन्यास दीक्षा ली थी, कुटीचक, बहूदक, हंसाश्रय व परमहंस कक्षाओका पालन किया था ।

अपने पुत्रों की इच्छासे आपश्रीने शीलाके उपर कुछ श्लोक लिखे जिसे ''शिक्षा श्लोक'' के नामसे जानते है उस में भगवत्सेवामें रहेने को बाताया था उस समय श्री ठाकोरजीने स्वयं प्रकट होकर ''डेडश्लोक'' सुनाया था ।

विक्रमाब्द १५८७ आषाढ शुकल २ (एक मतानुसार तृतीया) रविवार के दिन काशी के गंगाजल में आप खडे थे वहाँ से तेज: पुंज आकाशमें विलीन हुआ काशीनिवासीओंने अेक प्रहर तक उस तेज: पुंजकादर्शन किया था इस प्रकारका अभिप्राय है । इसे ''आसुरव्यामोहलीला'' कहते है ।

(नोंध : कइ महापुरुषों के द्वारा विभिन्न प्रकारके मतानुसार प्रसंगे बतायें गये है इस लिये चरित्रमें एक वाक्यता सिद्ध करना मुश्कीलसा है संस्कृत ग्रन्थो में भी शकसंवत - विक्रमाब्दके स्पष्ट उल्लश्व मिलने मुश्कीलसा है - संपादक)

(''पुष्टि रस'' ग्रन्थसे साभार)

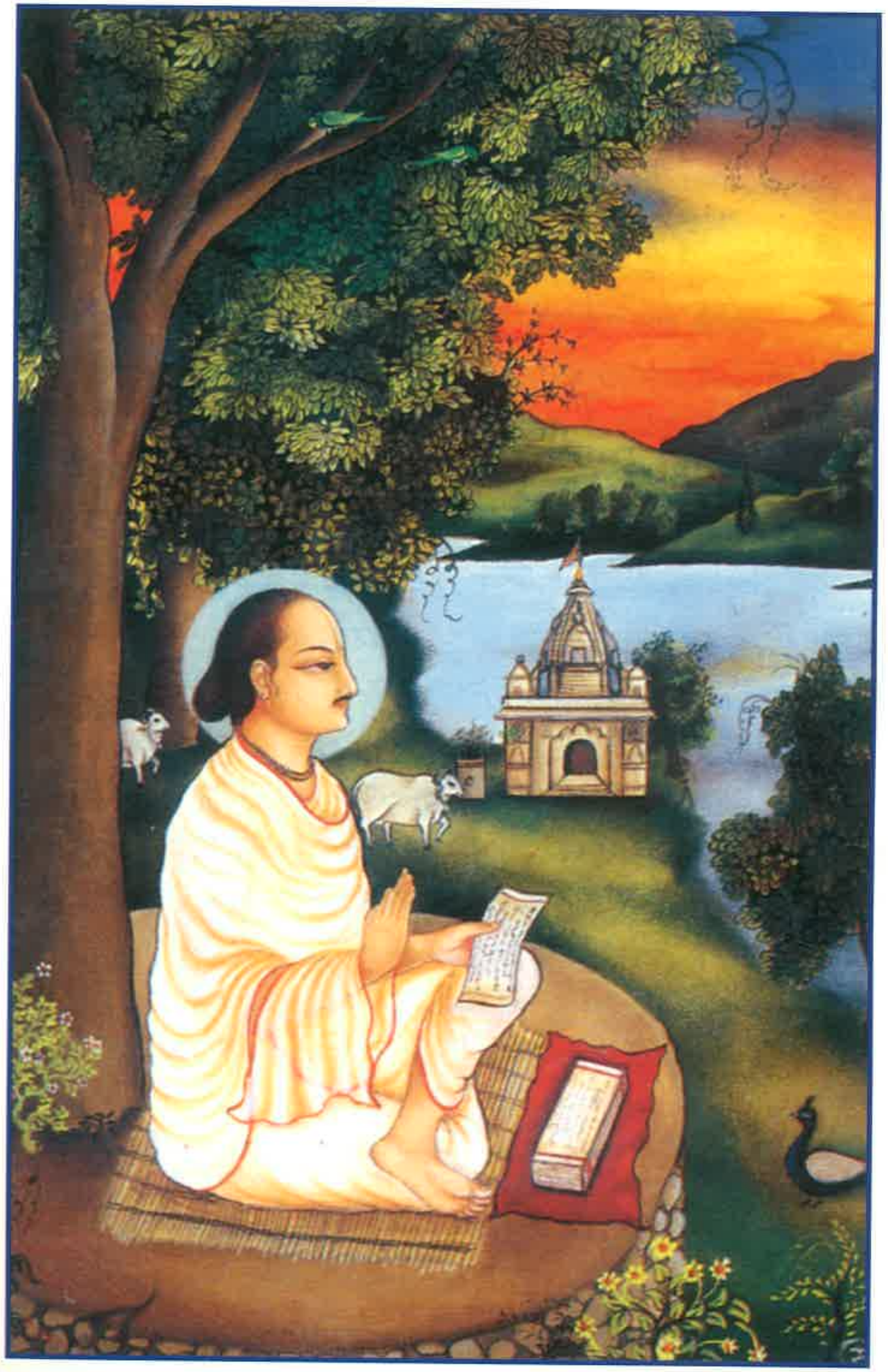

|| Shri Hari ||
|| Shri Dwarkesho Jayati ||

Goswami Vagishkumar

श्री निरंजनभाइ शास्त्रीजी

आपके द्वारा भेजी गइ “हमारे आद्य पुरुष” पुस्तिका मेटर पढनेसे वास्तवमें मनमें आनन्दानुभुति हुई । श्री पूर्वाचार्योंसे लेकर अपने आद्य पुरुष श्री महाप्रभुजी पर्यन्त के महापुरुषोंको याद करतें हुए सविशेष महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजीके चरित्री २० प्रकरणोमें समाविष्ट कीया है इस साहित्यसे ‘वैष्णव समाज’ लाभान्वित होगा.

वर्तमानमें श्री वल्लभके प्रदानकी समाजको स्मृति कराते हुए सामाजिक व धार्मिक विचारधारा आत्मसात कराई है ये उपादेयता महत्वपूर्ण है यह मेरा मन्तव्य है । अत: गो.वा. श्री रमणलालजी शास्त्रीजी धन्यवादपात्र है जो “आपणा मूल पुरुष” के लेखक हैं ।

एवं निरंजनभाइ सम्प्रदायके प्रति आपका प्रेम व सौहार्दभाव अति सुन्दर है । परंपरासे श्रीमद् भागवत आपके जीवनमें आत्मसात हुआ है “अत: किमधिकेन १” के न्यायसे में आनन्द आप्लावित हुं

भवदीय
गोस्वामी वागीशकुमार
कांकरोली

Shri Bethak Mandir : Kevdabaug, Madanzampa Road,
VADODARA-390 001. Ph. : +91-0265-2435543
Shri Dwarkadhish Mandir : Trutiya Pith Pranyas, Palace Mandir Marg,
KANKROLI-313 324. (Raj)
Ph. : +91-02952-230001, 230256
Shri Rajadhiraj Mandir : Rajadhiraj Marg, MATHURA-281 001.
Ph. : +91-0565-2406372

|| श्री कल्याणराय प्रभु विजयते ||

षष्ठपीठाधीश्वर
गोस्वामी श्री द्वारकेशलालजी महाराज
‘षष्ठपीठ’, श्रीकल्याणरायजी मंदिर, बाजवाडा,
श्रीकल्याणरायप्रभु मार्ग, मांडवी, वडोदरा-३९० ००१.
फोन : ०२६५-२४२३३२२, २४२६९४२. फेकस : ०२६५-२४३७१७२

શ્રીયુત આદરણીય શ્રી નિરંજનજી શાસ્ત્રીજી

“નત્યાશિષઃ”

ભગવદ્ કૃપા એવં શ્રી આચાર્ય શિરોમણી શ્રી વલ્લભાધીશ પ્રભુની અસીમ કૃપાથી આપનું પુસ્તક “આપણા મૂળ પુરૂષ” હિંદી ભાષામાં પ્રકાશિત થવા જઈ રહ્યું છે. તેનું અવલોકન કરતા અંતરમાં આનંદની અત્યધીક અનુભૂતી થઈ.

મૂળ પુરૂષ શ્રી યજ્ઞનારાયણજીથી લઈને શ્રી વલ્લભાચાર્યજીના દિવ્ય જીવન વૃત્તાંત સાથે વણી લઈને દરેક પ્રસંગોનું અતિ સુંદર પ્રતિપાદન કર્યું છે.

શ્રી પુષ્ટિ સંપ્રદાયના દૃષ્ટિકોણથી આ એક અતિ સુંરૂપ મહત્વપૂર્ણ રચનાત્મક અભિગમ સાથે પુસ્તક આ પુસ્તકમાં આલોખ્યુ છે જે આજની વલ્લભીય સૃષ્ટિને માટે ઘણી જ ઉપયોગી એવં સાર્થક જાણકારી સભર સિદ્ધ થશે.

આજ પ્રકારે આગામી ભવિષ્યમાં આપ શ્રીમદ્ આચાર્યચરણના તેમજ શ્રી વલ્લભકુળના ઈતર આચાર્યો રચિત ગ્રંથોનું પ્રકાશન કાર્ય કરતા રહો, એ જ અમારી શુભકામના સહ શુભાશીર્વાદ આપને પ્રદાન કરૂં છું.

શેષ સર્વમંગલ.

ભવદિય,

(ગો. શ્રી દ્વારકેશલાલજી મહારાજ)

॥ श्री कल्याणराय प्रभु विजयते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर
गोस्वामी श्री द्वारकेशलालजी महाराज
'षष्ठपीठ', श्रीकल्यांणरायजी मंदिर, बाजवाडा,
श्रीकल्याणरायप्रभु मार्ग, मांडवी, वडोदरा-३९० ००१.
फोन : ०२६५-२४२३३२२, २४२६९४२. फेकस : ०२६५-२४३७१७२

શ્રીયુત સમાદરણીય શ્રી નિરંજનજી શાસ્ત્રીજી

નતય : સસ્નેહ શુભાશીર્વાદ

આપના તરફથી પ્રકાશિત થયેલું "પુષ્ટિરસ" પુસ્તક વાંચ્યું. અધ્યનરૂપે અવગત કર્યું, તે વાંચીને ઘણી પ્રસન્નતા થઈ.

શ્રીમદ્ આચાર્યચરણની પરમ અનુકંપાથી આપશ્રી રચિત ષોડ્શગ્રંથોનું ગુજરાતી, અંગ્રેજી તેમજ હિન્દીમાં સંસ્કૃતના સશ્લોકાર્થ સુંદર વિવરણરૂપે પ્રકાશિત થયું છે.

આ પુસ્તક ભારત તેમજ વિદેશમાં પણ સુંદર પ્રકારે આવકારિત બન્યું છે. પુષ્ટિ જીવોને જ્ઞાનની પિપાસા છે પરંતુ તેને આપ જેવા શાસ્ત્રીજી વિદ્વદજનો દ્વારા તેમને પોષણ મળી શકે તે પ્રકારે આજના આ યુગમાં વિશેષ જરૂર છે.

આ પ્રકાશન શાસ્ત્રીય મર્યાદાનુકુળ એવં પુષ્ટિ સંપ્રદાયની પરંપરા પ્રમાણે પરિપુષ્ટ છે. આપના જેવા પરમ વિદ્વાન દ્વારા પુષ્ટિ સાહિત્યનું પ્રકાશન થતું રહે અને ભવિષ્યમાં તેને પુષ્ટિ જીવો લાભાન્વિત થતાં રહે એ જ અમારી અંતઃકરણની વંદન સહ અભિનંદનની લાગણી અભિવ્યકત કરૂં છું.

શેષ સર્વમંગલ.

ભવદિય,

(ગો. શ્રી દ્વારકેશલાલજી મહારાજ)

Dinkar Joshi
102-A, Park Avenue, Mahatma Gandhi Road, Dahanukarwadi,
Kandivali (West), Mumbai-400 067 Telefax : 28643289

॥ श्री हरिः ॥

गागर में सागर

मध्य युगमें भारतवर्ष का हिन्दु धर्म शताब्दिओंके बाद आक्रमक मुस्लीम समूहों के सामने पहेलीबाड्र स्तब्ध हुआथा उस समय तत्कालीन युगपुरुषोने धर्म में चैतन्यका संचार कीया उनमें से एक अग्रणी श्रीमद् वल्लभाचार्यजीका नाम भी ले सकते है । संत श्री तुलसीदासजी, श्री कबीरजी, श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे उत्तर भारतीय व स्वामी श्री रामानुजाचार्य, भक्तवर तुकाराम, ज्ञानदेव आदि दक्षिण भारतीय आचार्य व सन्तोने नवीन प्रकारकी भक्तिमार्गीय परंपराका आविष्कार करते हुए हिन्दु धर्म को आघात मुक्त कीया उनमें श्री वल्लभाचार्यजीका नाम अग्रक्रम में है ।

इतिहास एंव श्रद्धा दो अनुसरणोंसे कइ लेखकोने महाप्रभु श्री वल्लभका चरित्र लिखा है जीस प्रकार संत श्री तुलसीदासजीने श्रीरामचरित्रको नवचैतन्ययुक्त बनाया उसी तरह श्री वल्लभने श्री कृष्ण के बाल चरित्रको केन्द्रित करते हुए नवीन चेतनाका प्रवाह बहाया व प्रजा प्रेरक बनें उसी तरह श्रद्धेय ज्येष्ठवर्य श्री रमणलालभाइ शास्त्रीजी ने गुर्जरभाषामें "आपणा मूल पुरुष" नामसे ग्रन्थ लेखमें कीया । जिसका अनुवाद हिन्दी भाषामें "हमारे आद्य पुरुष" नाम ग्रन्थसे आदरणीय मु. श्री निरंजनभाई शास्त्रीजीने करवाकर समाजको दीया ।

चैतन के इस प्रवाह को इस छोटेसे ग्रन्थ में श्री शास्त्रीजीने केवल भक्ति भावसे ही नही किन्तु समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं इतिहास का सहयोग सिद्ध करते हुए अपने, समक्ष कम पृष्ठो में रखा हैं । अगर अपनी भाषा में कहना है तो यूं कह सकते है कि श्री शास्त्रीजीने "गागर में सागर" भरने का अत्युत्तम प्रयत्न कीया है ।

गंगाजलका एक बिन्दु भी जहां प्राप्त होता है वहां समग्र गंगाजी की पवित्रता प्रदान करता है वैसे ही श्री शास्त्रीजीने "हमारे आद्य पुरुष" ग्रन्थ में कीया है जो कि न केवल भक्तिमार्गीय परंपरा के पुरस्कर्ताओंकी अपितु पुष्टिमार्ग से अनभिज्ञ मनुष्यको भी श्री वल्लभाचार्यजीके विषय में विशेष जिज्ञासा प्राप्त हो ऐसा आलेखन है ।

श्री शास्त्रीजी को उनके इस प्रकारके सफल प्रयत्न के लिये मैं न केवल "शुभकामना" कह शकुं अपि तु इस प्रकारके स्तुत्य प्रयास के लिये केवल 'वन्दन' ही करता हूँ ।

दिनकर जोषी

दि. २६ मई २००६

द्रव्य सहायकर्ता

प. भ. गो. वा.

श्री जमनादास (मंगुभाइ) दत्ताणी

प. भ. गो. वा.

श्री रमाबहेन जमनादास (मंगुभाइ) दत्ताणी

प. भ. गो. वा.

श्री प्रभुदास देवजीभाइ गणात्रा

जन्म : दि. २४-जानेआरी १९३१

गोलोकवास : दि. १६-अगस्त २००३

प.भ.गो.वा.
श्री अमृतलाल केशुरदास गांधी
महुवावाळा नां भगवत्स्मरण

मैं अपने आपमें सुधर गया तो
दुनियासे एक बुरा व्यक्ति कम
हुआ इतना मानके दुसरेको
सुधारने की वजाय अपने आप
सुधरें।

शास्त्र वाणी

मेरे धर्मपिता पूज्यवर्य
श्री निरंजनभाइ शास्त्रीजीकी
प्रेरणासे श्रीमद् भागवत के मूल
श्लोक पारायण, अर्थ, विवेचन
एवं लेखन के लिये में अविरत
जुडी रही।

श्री चरणोंमें प्रणाम

- कुसुम पटेल
दिल्ही

मुझे श्रीमद् भागवत एवं
श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें
सरलतया अभ्यास कराने
वाले पितृतुल्य पूज्य गुरुजी
श्री निरंजनजी शास्त्रीको
अनेकशः वन्दन

- सौ. रेखा वसन्तभाइ सेजपाल
देवलाली

"हमारे आद्य पुरुष"

इस ग्रन्थमें जिन महानुभावोंने अपनी दैवी सम्पत्तिका सेवा विनियोग-सहयोग दिया है उन सबका धन्यवाद करते हुए यहाँ नामावलि प्रस्तुत है।

✱	प.भ.गो.वा. श्री जमनादास (मंगुभाइ) दत्ताणी परिवार द्वारा	रु. १०.०००
✱	प.भ.सौ. श्री कुसुमबहन पटेल - दील्ही	रु. २५०१
✱	प.भ. श्री अ.सौ. रेखाबहेन वसन्तलाल सेजपाल - देवलाली	रु. २५०१
✱	प.भ.गो.वा. श्री अमृतलाल केशुरदास संघवी	रु. २५०१
✱	प.भ.श्री अ.सौ. श्री वीणाबहन ठकरार- माटुंगा-मुम्बई	रु. १०००
	प.भ.श्री शशीकांतभाइ - लीमडी-मुम्बइ	रु. २००२

अ.सौ. श्री वनिता बहन राडिया लंडन द्वारा "जय श्रीकृष्ण भगवन्नाम स्मरणके लिये प्रत्येक हरिभक्तने रु २५० सेवा अर्पित की है उन सबका अभिवादन करते हुए श्री सेवामें "जय श्रीकृष्ण"

✱	प.भ.श्री कान्ताबहन चीनुभाइ नथवाणी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री कमलाबहन मजीठीया	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री धर्मेश एवं श्री कल्पेश छाटबार	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री शान्ताबहन हरिदास विठलाणी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री विनुभाई छाटबार	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री कुंवरबहन सोमैया	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री शोभनाबहन मनहरभाइ सोनाजी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री कान्ताबहन बदीयाणी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री शान्ताबहन मगदाजी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री तरलीकाबहन प्रफुलभाइ पोपट	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री विरेन्द्रभाइ वल्लभदास हिन्डोचा	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री शान्ताबहन ठकरार	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री नन्दुबहन रायचुरा डबरीवाला	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री रीटाबहन वडेरा	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री सरोजबहन सोनाजी	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री रंभाबहन भीखालाल हरजिवन राडीया	लंडन-यु.के.
✱	प.भ.श्री रमाबहन महेशभाइ काटकोरीया	लंडन-यु.के.

- प.भ.श्री अमित पटेल लंडन-यु.के.
- प.भ.श्री अ.सौ. प्रफुल्लाबहन भास्करभाई घघड बर्मिंगहाम-यु.के.
- प.भ.श्री भास्करभाई नरसिंहदास घघड बर्मिंगहाम-यु.के.
- प.भ.गो.वा.श्रीमती भानुबहन रतनशी भगवानदास मर्चन्ट मुम्बई
- प.भ.श्रीमती कान्ताबहन धरमशी पालीचा मुम्बई
- प.भ.श्री सौ. रजनीबहन रणजीतसिंह संपट मुम्बई
- प.भ.गो.वा.श्री जीवणलाल माणेकलाल शाह (मास्तर)
- प.भ.गो.वा.श्री रमणलाल चुनीलाल शाह
- प.भ.गो.वा.श्री कमलाबहन रमणलाल शाह (प.भ.श्री प्रफुलचन्द्र शाह द्वारा)
- प.भ.श्री एक वैष्णव-(श्री पद्माबहन द्वारा)
- प.भ.श्री सीताराम तुलसीदास ठक्कर (अमदावाद)
- प.भ.गो.वा. श्री गुणवंतराय जीवणलाल महेता मुम्बई (द्वारा सौ. रेखा महेता)
- प.भ.गो.वा. श्री जेठीबाइ पुरुषोत्तमदास देसाइ (दाहोद)
- प.भ.सौ. श्री काश्मीराबहेन रमेशभाइ शाह (मीरां रोड)
- प.भ.गो.वा. श्रीमती शान्ताबहेन मोहनलाल गांधी (मुम्बईवाला)
- प.भ. श्री जित सुधीर आशर (यु.अेस.अे.)
- प.भ. श्री सुधीरभाइ आशर (मुम्बई)

“आपणा मूल पुरुष” गुजराती आवृत्तिमांथी उधृत कतिपय अभिप्राय:

आपणा मूल पुरुष

“वैश्वानरो वर माससाद”

(ऋग्वेद)

जनतानुं कल्याण करनार श्रेष्ठ स्थाने बिराजे छे.

ऋग्वेदमांनी उपरोकत ऋचा लोककल्याणनी भावनानो पडघो पाडे छे. जनताने कल्याणना मार्गे दोरनार प्रजाना हृदयसिंहासनना अधिकारी बने छे.

परंतु कल्याण एटले शुं ? भौतिक सुखसगवडो वधारी आपावी एमां ज कल्याण समातुं नथी. उन्नत विचारोथी उच्च जीवन जीववानी प्रेरणा राखी यौवनशक्तिनो, पुरुषार्थनो, रचनात्मक मार्गे उपयोग करी जाग्रत प्रजानुं निर्माण करवुं, भौतिक सुख सगवडो खातर गमे एवी वस्तुओ वगर चलावी लइ प्रामाणिकताने राष्ट्रजीवनमां ओतप्रोत बनावी दइ गुणशीलसंपन्न प्रजा तैयार करनार साचा अर्थमां लोककल्याण करनार छे. अने आ ज श्रेष्ठ स्थाननो अधिकारी बने छे. वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, आ अर्थमां वैश्वानर हता, श्रेष्ठ स्थानना अधिकारी हता.

आमुख

श्रीमद् वैष्णव परिषदना प्रचार प्रवास दरम्यान डभोइमां शास्त्रीजी रमणलालनो साचो परिचय थयो. सांप्रदायिक विद्वानोमां रमणलालनी विद्वत्तानुं वलण कंइक जुदी ज जातनुं छे. पोते सांप्रदायिक सिद्धान्तोने आधुनिक ढबे जनता आगळ मूकवाना हिमायती छे जे एमनां पुस्तको परथी प्रतीत थाय छे.

'वैष्णवमार्ग दर्शिका'' नामनुं पाठ्यपुस्तक समुं एमनुं पुस्तक जनताने मळ्या पछी आपणी सृष्टिना स्थापक मूळ पुरुष जगद्गुरु श्री श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभुजीनुं जीवनदर्शन ''आपणा मूल पुरुष'' नामक ग्रन्थ द्वारा करावे छे. श्रीमदाचार्यचरणना जीवननी आ दृष्टिए विवेचनानी जरुर हती. आ पुस्तकथी ए पोषाशे.

आ ग्रन्थना 'आमुख' लेखननुं कार्य श्री रमणलाले मने सोंप्युं एथी मने तो एक सुन्दर तक मळी; अमारा पूर्वजोना जीवन प्रसंगो, अमारा आदिपुरुषनी जीवननोंध अने आपश्रीए स्थापित संप्रदाय - प्रणालीनी उत्तरोत्तर विकास - भूमिकाना आ ग्रंथनो आवकार मने आनन्दप्रद लागे छे.

आ पुस्तकनो आरंभ ज एवो घडायो छे के कोइ पण वाचनार पुस्तक वांचवा होंशे होंशे प्रवृत्त थाय. संप्रदायना अनभिज्ञोने पण कोईपण जातना पूर्वग्रह सिवाय सिद्धान्तनुं वस्तु पोते सरळ रीते समजावे छे. अन्त सुधी लेखननी ढब एटली ज रमणीय अने आनन्दप्रद रही छे ए आ ग्रन्थनी विशेषता छे.

जीवनचरित्रो बहुधा वाचकने कंटाळो ज उपजावे; आजे ए प्रकारनुं लेखन, गमे तेटलुं उच्च सर्जायुं होय तो पण, मात्र भंडार पूरतुं ज ठीक रहे छे. परन्तु एथी आपणा समाज शिक्षणने भारे खोट जाय छे. आदर्शन जीवनचरित्रोना दृष्टांतो अने सिद्धिना क्रमिक मार्ग आ रीते अनामत रहेता समाजजीवन जुदे राहे केळवाय छे.

त्यारे जीवनचरित्रो, सामुदायिक समाजनी ग्रहणशकित लक्षमां लइ लोकरुचिने अनुकुळ युगलक्षी ढबे एवा आदर्शो सहित रजू करवामां आवे, केटलाक सुन्दर प्रसंगो वार्तारसिक शैलिमां उताराय अने छतां ऐतिहासिक वस्तु, जेमनुं, तेम जळवाइ रहे एवी पध्धति वधारे आवकारदायी बने वधारे व्यवहारु थाय.

''आपणा मूल पुरुष''नुं वस्तु एवी सुन्दर ढबे आलेखायुं छे के एमां लेखकनी प्रासादिका विचक्षणकता छूपी रहेती नथी. श्रीमदाआचार्यचरणना जीवन-चरित्रने आनुषंगिक सांप्रदायिक विशिष्ट बळोनी अद्वितीयता एवी सरस रीते निरुपण करी आपी छे के कोइ पण अनभ्यासीने पण सरळ रीते पूरेपूरुं समजाई जाय.

आपश्रीना जीवनने अंगे प्रगटेलुं 'संप्रदाय नूर' केवी रीते अद्यापिपर्यंत झळहळतुं रह्युं छे एनुं पण विहंगदृष्टिए बहु ज सुन्दर समालोचन कर्युं छे. श्री रमणलालजीनी आवी साहित्यशक्ति सांप्रदायिक साहित्यना विकासनी दृष्टिए सुन्दर रीते वळी छे आ घणुं ज आवकार्य छे - साहित्य बळनी आजे आवश्यकता छे.

मात्र सांप्रदायिक साहित्यनी दृष्टिए ज नहि, पण शिष्ट साहित्यना सर्वमान्य विभागनी दृष्टिए पण श्री शास्त्रीनी कलम अभिनन्दनीय छे; आवां पुस्तको सांप्रदायिक साहित्यमां जेटलां प्रगट थाय तेटलां प्रचार अने प्रगतिनी दृष्टिए आवकार्य छे. श्री शास्त्रीना आ प्रयासनुं अन्य विद्वानो अनुकरण करे तो घणुं सारुं.

आजे संप्रदायनो नवयुवान वर्ग, कंईक करण अने कारणनी वातोमां वमळे चड्यो छे; एवाओने मूळ ग्रंथो वांचतां आवडतां नथी अने एमना विचारवमळ काचा रहे छे. ए वमळनो वंटोळ आवा साहित्यथी कंईक अंशे शमी शके अने अस्तिकतानुं वातावरण आवश्यक अंशे जामतुं जाय, ए ईच्छनीय छे, पुष्टिमार्गीय, वैष्णव कुटुम्बनां आबालवृद्धोने आ नानुं सरखुं पुस्तक घणुं ज उपकारक नीवडशे एवी मने खातरी छे अने प्रत्येक कुटुम्ब एकएक नकल तो कुटुम्बमां राखे एवी मारी भलामण छे.

श्री शास्त्रीना आ परिश्रमने हुं धन्यवाद सह सफळता इच्छुं छुं. अने आवा प्रयास सतत चालु राखवा आपणा मूळ पुरुष एमने वेगीली रीते करवा दीर्धायुं हो एटलुं इच्छी अहीं विरमीश.

मोटा मंदिर, भूलेश्वर
मुंबइ-२.

गोस्वामी श्रीकृष्णजीवनजी.

लेखकना बे बोल

विद्वानो अने जनसमाजने उपयोगी थाय ते माटे सरळ अने आधुनिक पध्धतिअे लखायेलुं साहित्य कंईक उपकारक नीवडशे अेम लागे छे.

मारी सांप्रदायिक प्रवृत्तिओमां प्रधानत: डभोइ पाठशाळाना अध्यापक तरीके वैष्णवसृष्टिनुं अने साहित्यनुं हुं स्वल्पांशे जे कंइ अवलोकन करी शकयो छुं अेमांथी आ जीवनचरित्र मारी दृष्टिअे आलेखवानी उत्तेजना मळी. ना. गायकवाड सरकारना प्राच्य विद्याखातामां श्री. मंजुलाल रणछोडलाल मजमूदार (हाल वडोदरा कोलेजना गुजरातीना प्रोफेसर) ना सहकारथी केटलुंक अैतिहासिक साहित्य हस्तप्रतो सह जोयुं. गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत अने हिन्दी तत्संबंधी अत्यार सुधीमां प्रगट थयेलुं साहित्य पण जोई गयो, अने पछी हस्तप्रत तैयार करीने पू.पा. गोस्वामी श्री ६ श्री गोकुलनाथजी महाराज (मोटा मंदिर) पू.पा.गो. श्री ६ श्री व्रजरत्नलालजी महाराज, सुरत, नि.ली. गुरुवर्य गो. श्री ६ श्री वल्लभलालजी महाराज, कामवन, पू.पो.गो. श्री ६ श्री व्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली, गो. श्री ६ श्री द्वारकेशलालजी, पोरबंदरवाळा,गो. श्री ६ श्री पुरुषोत्तमलालजी महाराज कोटावाळा वगेरे गो. बाळको, प्रो. गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट, अेम. अे. वडोदरा. प्रो. जेठालाल गोवर्धनदास शाह, अेम.अे. अमदावाद, श्री कंठमणिजी शास्त्रीजी, श्री रमानाथजी शास्त्रीजी, मु. शास्त्रीजी केशवराम काशीराम, भ. श्री नागरदास काशीराम बांभणिया अेम.अे., अेल अेल.बी. वगेरे सांप्रदायिक विद्वानोने देखाडतां प्रकाशन माटे प्रेरणात्मक उत्तेजन मळ्युं अेटले अे छापी प्रगट करवानुं आ साहस में कर्युं छे. अेमां मुद्रणनी दृष्टिअे जेटली विशेषता लवाय तेटलो प्रयास में कर्यो छे. मारा पूज्य पिताश्रीनी सतत प्रेरणानुं ऋण पुत्र तरीके हुं बीजु शुं प्रगट करी शकुं ? आ स्थळे आ प्रकाशनमां मने जे जे शुभेच्छको वडीलो अने मित्रोअे जे सहकार आप्यो छे ते बदल अे सौनो हुं खरा अंत:करणथी आभार मानुं छुं.

महागुजरातना समर्थ नवलकथाकार, वडोदरा - राज्य प्रकाशन खाताना अधिकारी राजारत्न श्री रमणलाल व. देसाइअे सुन्दर अने उपयोगी प्रस्तावना लखी आप्या ए बदल हुं अेमनो अत्यन्त ऋणी छुं.

आ अल्प पुस्तक पू.पो. गोस्वामी श्रीमद्गोकुलनाथजी महाराजश्रीना ज्येष्ठकुमार गो. श्री कृष्णजीवनजी (श्री गिरिधरलालजी) महाराज भीमांसातीर्थ, विशारद, अेओश्रीअे अेनी अगत्य विशे जे कंइ आलेखन कर्युं छे ते कृपा बदल अेओश्रीनो हुं अत्यन्त ऋणी छुं. 'नवप्रकाश' सांप्ताहिकना सम्पादक रा. रा. चंदुलाल जेठालाल व्यास 'मयूख' अेमनो पण आभारी छुं.

आ पुस्तकनो सचित्र शृंगारिक करवामां इष्टदेव श्रीनाथजीनी विविधरंगी छबीनी मुद्रा बंधुभावे आपवा बदल प.भ. श्री रणछोडदास वरजीवनदास पेटलादीनो पण सहर्ष आभार मानुं छुं. जे जे ग्रन्थो अने साहित्य जेना जेना तरफथी मने जोवा मळ्युं छे तेना ग्रन्थकर्ताओ अने अन्य सौनो पण आभारी छुं.

चरित्र अेटले दर्पण पण आवी अद्वितीय विभूतिना जीवनदर्पणमां मानुषी आलेखन जेटलुं उणपभर्युं होय तेटलुं निभावी लेवाय छे. अे ज रीते अल्प प्रयास पण भाविक वाचकवृन्द निभावी लेशे अेम मानुं छुं. युगलक्षी दृष्टिअे करवा धारेलो आ प्रयास केटलो सफळ थयो छे अे तो वांचनारना ज मते अंकाय, बीजुं शुं लखुं ? श्रीमदाचार्यचरण आवी साहित्यप्रवृत्तिने वेगवान बनाववा प्रेरणा पूरो अेटली प्रार्थना करी विरमुं छुं.

कृष्ण भुवन; रेंटिया पोळ — भवदीय
उमरेठ,
સંવત ૧૯૯૮
श्री गोकुलेश जयन्ती, ९८ — रमण शास्त्री

गुजराती साहित्यकार श्री रमणलाल व. देसाइ द्वारा प्रस्तावना

शास्त्रीजी रमणलाले श्रीमद् वल्लभाचार्यजीनुं जीवनचरित्र लखीने गुर्जर समाजनी बहु सारी सेवा करी छे. वल्लभी संप्रदाये हिंदनी करेली सेवानो विचार बाजुअे मूकीअे तो पण गुजरातना जीवन उपर अेणे करेली असर न भुलाय अेवी छे. साहित्य कला अने नित्यजीवन उपर पुष्टिमार्गे पाडेली छाप आज पण आपणे जोइ शकीअे छीअे.

अेवा व्यापक असर उपजावनार संप्रदायना स्थापक महापुरुषनुं जीवनचरित्र रंजनकारक, रोमांचक अने बोधप्रद होय ज. पांचसो वर्ष सुधी जे मार्गनुं संस्कारबळ जीवंत रहेलुं छे ते संस्कारबळनामूळ झरणा सरखा श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने आपणी आर्यसंस्कृतिना अेक भव्य प्रतीकरुप गणी शकाय.

श्री शास्त्रीजीअे आवी विभूतिने सारो न्याय आप्यो छे अेम कहेवामां हुं जराय आचकातो नथी. श्रीमद् आचार्यनुं जीवन अने अेमनी फिलसूफी सारी रीते अने भाव पूर्वक गुर्जर भाषामां उतारनारे भारे पात्रता मेळववानी जरुर छे, अने पुस्तक जोतां अेवी पोतानी पात्रता श्री रमणलाल शास्त्रीअे सिद्ध करी बतावी छे.

शास्त्रज्ञो घणी वार सामान्यताथी दूर चाल्या जाय छे, परंतु आ रसभर्या पुस्तकना लेखक शास्त्रीजीअे भाषा अने निरुपणमां अेवी सरळता उपजावी छे के विद्वान तेमज सामान्य वाचकने आ जीवनचरित्र बहु ज रुचिकर वाचन पूरुं पाडशे.

पुष्टिमार्ग विशेनी गेरसमजूतीओ दूर करवामां, आद्यस्थापकना जीवनप्रसंगो विचारपूर्वक गोठववामां अने भाषाने सर्वप्रिय बनावी मात्र सांप्रदायिक दीवालोमांथी श्रीमद् आचार्यने बहार लावी सहुना बनावी देवामां शास्त्रीजी रमणलाल सफळ थया छे.

आवा पुस्तको अे ओ प्रसिद्ध करे तो अेओ मात्र संप्रदायनी ज नहि, पण गुर्जर जनतानी सेवानो यश मेळवशे, अेम मने आ पुस्तक जोतां खातरी थाय छे.

हुं श्री शास्त्रीजीने सफळता इच्छुं छुं - जो के अेमना सरखा विद्वानने सफळता इच्छवानुं अहं पण मने धृष्टताभर्युं लागे छे.

वडोदरा
रमणलाल व. देसाइ

नवुं संस्करण

मने जणावतां आनंद थाय छे आज २८ वर्षे आ पुस्तकनुं नवुं संस्करण करवानो सुयोग मळ्यो छे. नकलो घणा समयथी खलास थइ गइ हती अने गुणानुरागी वाचकोनी मांग सतत रहेती हती. मारा संयोगोने लइ हुं पहोंची वळ्यो नहोतो. आ वर्षे आ योग मळ्यो छे अने भाषा अने जोडणीनी दृष्टिअे जरुरी संशोधन करी, केटलुंक बिन-उपयोगी रद करी आ साधी आप्युं छे. अेना वाचकोने अे संतोष आपशे तो मारो प्रयत्न लेखे छे. नवा अभिप्रायो आमां सामेल कर्या छे. मारा सौ हितैषीओनो हुं आभारी छुं.

ता. १-८-७०, मुंबई-६६
रमण शास्त्री

नवो सत्कार

वेदशास्त्रसंपत्न,

शास्त्रीजी रमणलाल ज्येष्ठाराम,

आपे लखेला "आपणा मूल पुरुष" श्रीमद् वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजीना जीवनचरित्र अने सिद्धान्तोना पुस्तकनी तृतीय आवृत्तिनुं प्रकाशन थाय छे अे जोइने मने घणो ज आनंद थाय छे.

नवलकथा पध्धतिथी २० प्रकरणोमां चरित्र, सिद्धान्तो, श्री गोवर्धननाथजी विशे अने षोडशग्रंथोनो सार समाववामां विद्वान लेखक तरीकेनी हृदयंगम रोचक शैली माटे हार्दिक धन्यवाद आपुं छुं. आपना गोलोकवासी विद्वान पिताश्रीअे जीवनभर सम्प्रदायनी नोंधपात्र अपूर्व सेवा बजावी छे. आपे अेमनो वारसो जाळवी नाना मोटा १८ ग्रंथो लखी प्रकाशन करी गुर्जर जनतानो सारो यश मेळव्यो छे. आ ग्रंथनी तृतीय आवृत्तिनुं प्रकाशन थाय छे अे ज अेनी लोकप्रियता सिद्ध करे छे. प्रभु श्री मथुरेशजी आपने वधु ग्रंथो लखावी प्रकट करवानी शक्ति अर्पे अने अनेक क्षेत्रे आपनी सेवाओ विकसित बने अेवी प्रभु प्रत्ये अभ्यर्थना करुं छुं. अपना ज्येष्ठ पुत्र निरंजनप्रसाद अने तृतीय पुत्र प्रफुल्लचंद्र सारी सेवा बजावी आपना परंपराप्राप्त विद्वान कुटुम्बने यशस्वी बनावी रह्या छे.

साहित्यरसिको अने वैष्णवो आवा सर्वप्रिय सुंदर ग्रथोनो आदरपूर्वक सत्कार करे अे ज शुभेच्छा.

भावत्क

'लालमणि,' मुंबइ-२ — गो. रणछोडाचार्य (प्रथमेश)

श्री कृष्ण: शरणं मम

खरेखर महापुरुषोना निर्मळ चरित्रने शब्दबद्ध करवानुं कार्य अत्यन्त कठिन छे. अेमनी गहन जीवनलीलाओनो हेतु कळवो अे पण सामान्य मानवीनी बुद्धिशक्तिनी सीमा बहारनुं कार्य छे, आम छतां अे कार्य श्रद्धाभकित सहित कोइ के करवुं ज पडे छे अनंत आकाशनी आछी कल्पना आपवा अर्थे कागळ पर बार इंचनो नकशो दोरवो ज पडे छे. "आपणा मूल पुरुष"नी रचना आदरणीय श्री रमणलाल ज्येष्ठाराम शास्त्रीअे संशोधनना श्रमपूर्वक करी छे. अेमणे संक्षिप्त चरित्रमां असंख्य लीलाओने बीजस्वरुपमां प्रस्तुत करी विशदता माटे परिपूणर्ण अवकाश राख्यो छे. आ कारणे अन्य संशोधकोने आवश्यक मार्गदर्शन मळी रहेशे. हुं आ लघु ग्रंथने आधन्त ध्यानपूर्वक वांची गयो छुं; मने अे अतिशय गम्यो छे. मने लागे छे के प्रत्येक पाठकना श्री शास्त्रीजी धन्यवादने पात्र छे. अेमनो प्रयत्न श्लाध्य छे. ग्रंथनुं माधुर्य माणवा माटे तो स्थिर चित्ते अेनी वारंवार आवृत्तिओ करवी घटे छे. अे पछी ज मनना मार्गो मोकळा बनी शके.

ग्रंथ प्रचारने योग्य छे, परम आदरणीय छे.

मलाव (पंचमहाल) गुजरात — स्वामी कृपाल्वानन्द

* * *

शास्त्रीजी रमणलालभाईनुं लखेलुं "आपणा मूल पुरुष" श्री वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजीना जीवनचरित्रनुं पुस्तक मने खूब गम्युं छे. शास्त्रीजी भागवत वगेरे शास्त्रोना मर्मज्ञ विद्वान अने उपासक छे. पुस्तक अैतिहासिक संशोधन करीने, सरळ अने रोचकभाषामां २० प्रकरणोमां व्यवस्थित लखायेलुं छे. जीवनचरित्र, पुष्टिमार्गना सिद्धांतो, षोडश ग्रंथोनो सार, श्रीनाथजीनो इतिहास सुंदर समजाववामां आव्या छे.

अेओना द्वारा घणां सत्कार्यो थया छे अने हजीअे थशे. अेओ द्वारा प्रकट थयेलां अढार पुस्तकोमां आ ग्रंथ अेमना जीवननी यशकलगी समान छे. आ पुस्तकनी त्रीजी आवृत्ति बहार पडे छे अे ज अेमना ग्रंथनी उपयोगिता अने अेमनी लोकप्रियता सिद्ध करी बतावे छे. शास्त्रीजीअे गुर्जरी गिरानी नोंधपात्र सेवा बजावी अेमनी पात्रता पुरवार करी बतावी छे. भगवानना कार्य करवा बदल हुं शास्त्रीजीने हार्दिक अभिनंदन आपुं छुं. अेओ आनाथीये वधु सेवा करवा भाग्यशाळी बने अेवी ईश्वर पासे प्रार्थना करुं छुं.

शास्त्री पाडुरंग वैजनाथ

गीतापाठशाळा, माधवबाग, मुंबई-४.

आ पुस्तकना घणा अभिप्रायो मळ्या हता. पुस्तकनुं कद वधी न जाय अने वाचकोने कंटाळो न आवे एवा पवित्र हेतुथी मुख्य अभिप्रायोना तद्दन थोडा नमूना आप्या छे.

सत्कार

प्रिय महाशय !

तमारी प्रत्येक प्रवृत्तिथी हुं वखतोवखत वाकेफ रहुं छुं अने ईश्वर तमने तमारा उत्तरोत्तर अभ्युदय वांच्छु छुं.

पुस्तक प्रकाशन अति रमणीय थयुं छे. अन्दरनी वस्तु पण उच्च कोटिनी छे. आजे वैष्णव समाजने आवा ऐतिहासिक विवेचनसाहित्यनी पुष्कळ जरुर छे. अत्यारे तमे ए आवश्यकता पूर्ण करी छे, ए माटे हार्दिक अभिनंदन.

(नित्यलीलास्थ), गोस्वामी श्री व्रजनाथ शर्मा, पारला

* * *

शास्त्रीजी रमणलाल ज्येष्ठारामजीए लखेलुं ''आपणा मूल पुरुष'' पुस्तक अमोए वांच्यु छे. शास्त्रीजीनी लेखन शैली आकर्षक मालूम पडी छे. अने सांप्रदायिक सिद्धान्तोनुं निरुपण घणी ज सुन्दर रीते करेलुं छे. सांप्रदायिक सिद्धान्तजिज्ञासुओ माटे आ पुस्तकने अमो घणुं उपयोगी गणीए छीए अने आशा राखीए छीए के वैष्णव जनता आ पुस्तकने खरीदी शास्त्रीजीने आवां पुस्तको लखवामां उत्तरोत्तर उत्साहित बनावशे. ग्रन्थ लखवा माटे शास्त्रीजीने अमे धन्यवाद आपीए छीए.

गोस्वामी श्री गोविंदरायजी महाराज (पोरबंदर)

* * *

शास्त्रीजी रमणलालभाई ए ''आपणा मूल पुरुष'' ग्रन्थनी मूळ हाथप्रत मने वांचवा आपी हती. ए हुं साद्यन्त वांची गयो. ए उपरथी मने स्पष्ट लाग्युं के आ दिशामां ए एक नवीन प्रकारनो प्रयत्न छे. श्री रमणलाल शास्त्रीनी कलममां जे एक रसालुता छे ते मने आमां स्पष्ट थई छे. आमां अ.भू. आचार्यवर्य श्रीमद् वल्लभाचार्यचरणोनुं जीवनचरित्र सुमधुर भाषामां आपवामां आव्युं छे ते मात्र सांप्रदायिकोने नहि, पण इतर वर्गने पण रोचक नीवडे तेवुं छे. आ पद्धतिए एओ अन्यान्य चरितग्रन्थो रची सांप्रदायना महत्त्वना छतां सर्वभोग्य साहित्यमां उमेरो करे एवी ईच्छा व्यकत करतां आनंद थाय छे. वैष्णव जनता आ वस्तुनो समादर करशे ज एनी खातरी मानुं छुं.

केशवराम काशीराम शास्त्री, अमदावाद

* * *

श्री रमणलाल शास्त्रीजीनी स्वतंत्र कृति ''आपणा मूल पुरुष''ने अभिनंदतां मने घणो ज आनंद थाय छे. आ पुस्तक जोई ने मने एम लागे छे के आपणी महाविभूतिओनां जीवनचरित्र आवी सरस रीते लखवां जोईए. आ पुस्तकनी भाषा तथा शैलीने उठाव थयो छे के नवीन प्रकारनुं एवो सरस साहित्य वांचनारने पण ए रुचिकर थया वगर रहेशे नहि. रुपरंग पण एवा आकर्षक बन्यां छे. सांप्रदायिक साहित्यमां आ ग्रन्थ किंमती उमेरो करशे. शास्त्रीजी आवां बीजां पुस्तको आपे अने वैष्णवजनता एनो सुंदर सत्कार करे एवुं ईच्छुं छुं. एमना कार्यमां यश इच्छुं छुं.

जेठालाल गोवर्धनदास शाह, एम.ए.
निवृत्त प्रिन्सिपाल-ला. उ. महिला पाठशाला - अमदावाद.

* * *

श्रीयुत शास्त्रीजी रमणलाल ज्येष्ठारामजीए रचेलुं ''आपणा मूल पुरुष'' नामनुं पुस्तक आद्योपान्त हुं वांची गयो. श्रीयुत शास्त्रीजी ए स्वरचित पुस्तकनुं लेखन एटली सुंदरताथी कर्युं छे, जे वांचतां प्रशंसाना उद्‌गारो काढया विना नथी रहेवातुं. शास्त्रीजीए साहित्यमां अनेरी भात पाडी छे. श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजीनुं आदर्श जीवनचरित्र अने एओश्रीना मननीय सिद्धान्तो सुमधुर रीते बाळकोना हृदयमां आरुढ करवामां एओए आ पुस्तक द्वारा बहु ज सारो प्रयास कर्यो छे ए बदल हुं एओने अनेकानेक हार्दिक अभिनंदन आपुं छुं. वैष्णव समाज आ बदल श्रीयुत शास्त्रीजीनो बहु ऋणी छे. श्रीयुत शास्त्रीजी पोताना ज्ञाननो लाभ आपे एवी आशा सह विरमुं छुं.

घाटकोपर, मुंबई — **गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी शर्मा**

* * *

नामोनो उल्लेख मात्र करुं छुं :

नि.ली. गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमलालजी महाराज मोटी हवेली, जूनागढ (सौराष्ट्र); गोलोकवासी गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट एम.ए. वडोदरा कोलेजना संस्कृतना प्रोफेसर; सद्‌गत अतिसुखशंकर कमळाशंकर त्रिवेदी - प्रिन्सिपाल - गार्डा कोलेज, नवसारी; साक्षर स्व. श्री जगजीवनदास दयाळजी मोदी, निवृत्त, अध्यापक, मेल ट्रेनिंग कोलेज - वडोदरा; साक्षरश्री डॉ. मंजुलाल र. मजमूंदार एम.ए., निवृत्त, प्रोफेसर वडोदरा कोलेज; शास्त्रीजी पुरुषोत्तम पीतांबर - वीसनगर; गोलोकवासी शास्त्रीजी हरिकृष्ण वीरजी, पोरबंदर; गोलोकवासी नटवरलाल माणेकलाल सुरती - नायब दीवान - भावनगर; डॉ. प्रतापराय मोहनलाल मोदी, एम.अे., पी. अेच.डी; निवृत्त संस्कृत अध्यापक, शामळदास कोलेज - भावनगर, हाल, वडोदरा; प.भ. प्रेमलाल गो.भेवचा (भक्तिप्रिय), पोरबंधर वैद्य विठ्ठलप्रसाद पुरुषोत्तम शास्त्री, विसनगर श्री वसंतराय,

हरिकृष्ण शास्त्रीजी.
जन्मभूमि दैनिक पत्र, मुंबई १.
गुजराती पंच, अमदावाद
नव प्रकाश साप्ताहिक, मुंबइ, अनुग्रह मासिक-अमदावाद.

॥ अथ श्रीवल्लभाष्टकम् ॥

स्रग्धरावृत्त-छंद

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितरसिकानन्दसन्दोहरूप-
स्फूर्जद्रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्तसर्वोऽपि शश्वत् ।
तस्यैवात्मानुभावप्रकटनहृदयस्याज्ञया प्रादुरासीद्
भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरतिकरुणस्तं प्रपद्ये हुताशम् ॥१॥

भावार्थ : श्री वृन्दावनचन्द्र प्रकटित रसिकानन्द के समूह रूप एवं रास आदि लीलाओं के अमृत सागर से जिनके सब अंग परिपूर्ण हैं वे अपने हृदयस्थ लीलाओं का अनुभव प्रकट करने के लिए, प्रभु की आज्ञा से इस पृथ्वी मण्डल में मानव रूप धारण करके प्रकट हुए उन अति दयालु वैश्वानर अग्निदेवकी मैं शरण हूँ (१)

नाविर्भूययाद्भवांश्चेदधिधरणितलं भूतनाथोदितास -
न्मार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ देवसर्गेऽपि जाताः ।
घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजाः प्राप्नुयुर्नैव दैवी
सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निजफलरहिता देव वैश्वानरैषा ॥२॥

भावार्थ : हे वैश्वानर प्रभु ! यदि आप इस भूतलपर प्रकट न होते तो यह वैदिक सृष्टि और दैवी सृष्टि के मनुष्य भी अन्ध के समान भूतनाथ के प्रकट किये हुए मार्ग के अनुगामी होते एवं ब्रजराज कुमार की प्राप्ति हमें किसी प्रकार से भी नहीं होती, तब यह दैवी सृष्टि अपना फल न मिलने के कारण व्यर्थ ही हो जाती । (२)

न ह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे
यस्मात्साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेव ।
तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयन्ति
भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धन्तमोगाः ॥३॥

भावार्थ : श्रुतियों के तात्पर्य को विना वागधीश (वाणीपति) के अन्य कोई भी जानने में समर्थ नही है, क्योंकि पतिव्रता स्त्री अपने हृदय की बात निज पति के आगे ही प्रकट करती है इसलिए है श्री वल्लभप्रभु ! आपके कहे हुए वचनों के विरूद्ध जो निरुपण करते है वे भ्रॉंत हैं एवं उनका स्वभाव आसुर होने के कारण वे अन्धतम नरक में गिरते है। (३)

प्रादुर्भूतेन भूमौ ब्रजपतिचरणाम्भोजसेवाख्यवर्त्म-
प्राकट्यं यत्कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये ।
यस्मादस्मिन्स्थितो यत्किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ-
त्यद्धा तद् गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति ॥४॥

भावार्थ : हे अग्निदेव ! आपने भूतल पर प्रकट होकर ब्रजपति के चरणकमल की सेवा नामक मार्ग प्रकट किया सो वास्तव में अपने निज भक्तों के लिए ही प्रकट किया है, ऐसा मैं मानता हूँ क्योंकि इस मार्ग में आया हुआ जीव जो कुछ वस्तु चाहे जिस प्रकार और चाहे जहाँ पर प्रभु को समर्पण करने की इच्छा करे तो वह वस्तु श्री गोपिकेश अपने हाथों से आनन्द पूर्वक हँसते हुए अंगीकार करते हैं । (४)

उष्णत्वैकस्वभावोऽप्यतिशिशिरवचःपुंजपीयूषवृष्टि-
रार्तेष्वत्युग्रमोहासुरनृषु युगपत्तापमप्यत्र कुर्वन् ।
स्वस्मिन्कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेतद्
यस्मादानन्ददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चासुराग्नेः ॥५॥

भावार्थ : हे अग्निदेव ! आपका स्वभाव उष्णत्व होते हुए भी आप एक ही समय में अपनी अति शीतल वाणी से विप्रयोगार्ति वालों के ऊपर अमृत वर्षा करते हैं और तामस मोह युक्त आसुर मनुष्यों को ताप उत्पन्न करते हैं, ऐसा करने से आप अपने को श्रीकृष्ण का मुखारविन्द रूप प्रकट करते है न कि भूतनाथ के समान रौद्रता, क्योंकि वह भी ब्रज भक्तों के समूह को आनन्द दान तथा आसुरों का नाश करता है । (५)

आम्नायोक्तं यदंभोभवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो यत्
सर्गादौ भूतरूपादभवदनलतः पुष्करं भूतरूपम् ।
आनन्दैकस्वरूपात्त्वदधिभु यदभूत् कृष्णसेवारसाब्धि-
श्चानन्दैकस्वरूपस्तदखिलमुचितं हेतुसाम्यं हि कार्ये ॥६॥

भावार्थ : हे विभो ! वेद में कहा है कि अग्नि तत्व में से जल तत्व उत्पन्न हुआ यह सत्य ही है, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में भी भूतरूप अग्नि में से भूतरूप जल उत्पन्न हुआ है । इसी प्रकार आपके आनन्दमय स्वरूप में भी इस पृथ्वी पर केवल आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की

सेवा रूपी रस समुद्र प्रकट हुआ है वह सब उचित ही हैं इसलिए आप कार्य और कारण में समान ही हैं । (६)

स्वामिञ्श्रीवल्लभाग्ने क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्तितापो जनेषु ।
यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
दृष्टेऽप्यस्मिन्मुखेन्दौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् ॥७॥

भावार्थ : हे स्वामी श्रीवल्लभाग्नि ! यदि एक क्षण भी आपका सन्निधान (सन्मुख सम्बन्ध) हो तो आपकी कृपा से प्राणप्रिय ब्रज के अधीश्वर श्रीकृष्ण के बदन कमल के दर्शन की आर्ति और विरह ताप होते है सो तो उचित ही है; परन्तु आपके मुखचन्द्र को देखने के बाद भी श्री कृष्ण के दर्शन के लिए विप्रयोगाग्नि विशेष प्रचण्ड उदय होती है यह बड़ी भारी विचित्रता है । (७)

अज्ञानाद्यंधकारप्रशमनपटुताख्यापनाय त्रिलोक्या-
मग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्ण एव ।
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभवनिगमाद्युक्तमानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभे मे निखिलबुधजना गोकुलेशं भजन्ते ॥८॥

भावार्थ : हे श्रीवल्लभ प्रभु ! आपकी चातुरी अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने में अत्यन्त बलवान होने के कारण ही कवियों ने सदैव आप के अग्निस्व का वर्णन किया है, परन्तु वास्तव में तो आप साक्षात कृष्ण ही प्रकट हुए है इसलिए वेद वाक्यों से अनुभव करके सब बुद्धिमान मनुष्य आपको श्री गोकुलेश के समान ही भजते हैं । (८)

॥ इति श्री विठ्ठलेश्वरविरचितं श्रीवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रम् ॥

श्रीसप्त-श्लोकी

शिखरिणी-छंद

स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेणातिभरिता
विहारान्कुर्वाणा व्रजपतिविहाराब्धिषु सदा ।
प्रिया गोपीभर्तुः स्फुरतु सततं वल्लभ इति
प्रथावत्यस्माकं हृदि सुभगमूर्तिः सकरुणा ॥१॥

भावार्थ : दिव्य प्रकाशमान श्री कृष्ण के प्रेम रूपी अमृत रस के समूह से भरपूर, व्रजपति के विहार सागरों में सदैव विहार करती हुई, गोपीनाथ को प्रिय जोकि वल्लभ नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है, अति दयालु सुभग मूर्ति हमारे हृदय में सदा प्रकाशमान रहो । (१)

आर्या छंद

श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता मूर्तिः ।
श्रीवल्लभाभिधानस्तनोतु निजदासस्य सौभाग्यम् ॥२॥

भावार्थ : श्री भागवत के प्रत्येक शब्दरूपी अलौकिक मणि के समान भावरूपी किरण से सुशोभित मूर्तिं जिनका श्री वल्लभनाम है वे अपने दास का सौभाग्य मुझ में अचल स्थापित करें । (२)

शार्दूलविक्रीडित छंद

मायावादतमो निरस्य मधुभित्सेवाख्यवर्त्माद्भुतं
श्रीमद्गोकुलनाथसंगमसुधासंप्रापकं तत्क्षणात् ।
दुष्प्रापं प्रकटीचकार करुणारागातिसंमोहनः
स श्रीवल्लभभानुरुल्लसति यः श्रीवल्लवीशान्तरः ॥३॥

भावार्थ : मधुदैत्य के समान मायावादरूपी अंधकार को नाश करके जिन्होंने सेवारूपअद्भूतमार्ग प्रकट किया है, जिस में कि श्रीमद्गोकुलनाथ के संगरूपी दुर्लभ सुधा की तुरन्त ही प्राप्ति होती है, वे करुणा और प्रीति द्वारामोह उत्पन्न करने वाले एवं श्रीगोपीश के हृदय में निवास करने वाले श्रीवल्लभ भानु प्रकट है । (३)

शिखरिणी - छंद

क्वचित्पांडित्यं चेन्न निगमगतिः सापि यदि न
क्रिया सा सापि स्याद्यदि न हरिमार्गे परिचयः ।
यदि स्यात्सोऽपि श्रीव्रजपतिरतिर्नेति निखिलै-
र्गुणैरन्यः को वा विलसति विना वल्लभवरम् ।।४ ।।

भावार्थ : कदाचित् किसी में पांडित्य होय परन्तु वेद में गति नहीं कदापि वह भी होय तो उसके अनुसार कर्तव्य नहीं और यदि वह भी होय तो हरिमार्ग में परिचय नही कदापि वह भी होय तो व्रजपति में रति नहीं ऐसे सब गुणों सहित श्री वल्लभवर बिना कौन आचरण कर सकता है ? ओर कोन हो सकता है ? ।।४।।

शार्दूलविक्रीडित छंद

मायावादिकरीन्द्रदर्पदलनेनास्येन्दुराजोद्गतः
श्रीमद्भागवताख्यदुर्लभसुधावर्षेण वेदोक्तिभिः ।
राधावल्लभसेवया तदुचितप्रेम्णोपदेशैरपि
श्रीमद्वल्लभनामधेयसदृशो भावी न भूतोऽस्त्यपि ।।५ ।।

भावार्थ : मायावादरुपी मदोन्मत्त हाथी के अभिमान को चूर करने वाले मुख चन्द्र द्वारा श्रीमद भागवत नाम की दुर्लभ सुधा की वर्षा करने वाले तथा वेद की आज्ञानुसार राधावल्लभ की सेवा तथा प्रेमपूर्वक उसके उपयोगी उपदेशों को करके श्रीमद्वल्लभ नाम प्राप्त करने वाले अन्य न तो कोई आगे हुआ, न है तथा न भविष्य में भी कोई होगा । (५)

श्लोक ६ - ७ पृथ्वी छंद

यदङ्घ्रिनखमंडलप्रसृतवारिपीयूषयुग्
वराङ्गहृदयैः कलिस्तृणमिवेह तुच्छीकृतः ।
व्रजाधिपतिरिन्दिराप्रभृतिमृग्यपादाम्बुजः
क्षणेन परितोषितस्तदनुगत्वमेवास्तु मे ।।६।।

भावार्थ : जिनके चरण नभमण्डल से सुन्दर रीति सों बहते हुए अमृतरस से जिनके हृदय भीगे हुए हैं । उन्होंने इस कलिकाल को कण के समान तुच्छ मान रखा है एवं लक्ष्मीजी प्रभृति भी जिनके चरण कमल की इच्छा रखती है ऐसे व्रजपति को जिन्होंने क्षण भर में प्रसन्न कीये है उनका (श्रीवल्लभाचार्यजीका) मैं दासत्व ही चाहता हूं । (६)

अघौघतमसावृतं कलिभुजंगमासादितं
जगद्विषयसागरे पतितमस्वधर्मे रतम् ।
यदीक्षणसुधानिधिः समुदितोऽनुकम्पामृता-
दमृत्युमकरोत्क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् ।।७।।

भावार्थ : जो कि पापों के अन्धकार से ढका हुआ है एवं जिसको कलिकाल रूपी सर्प ने ड़स लिया है, तथा जगत के विषयसागर में पड़ा हुआ अधर्म में मग्न है ऐसों की भी जिन्होंने अपनी अमृत मय दृष्टि से दयार्द्र होकर देखते ही क्षणभर में अमर कीया है उन श्रीवल्लभाधीश्वर महाप्रभुजी के चरणारबिन्दों में हमारा आदर भाव दृढ़ हो । (७)

।। इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचितं श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

॥ अथ श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रम् ॥

प्राकृतधर्मानाश्रयमप्राकृतनिखिलधर्मरूपमिति ।
निगमप्रतिपाद्यं यत् तच्छुद्धं साकृति स्तौमि ॥ १ ॥

भावार्थ : प्रकृतिके लौकिक गुणोंसे पर एवं अलौकिक आनन्दादि अखिल गुणोंसे युक्त स्वरुपसे वेदोमें जिनका प्रतिपादन किया है ऐसे दिव्य एवं शुद्ध आकारवाले (पुरुषोत्तम-की) स्तुति करता हूँ । ॥२ ॥

कलिकालतमश्छन्नदृष्टित्वाद्विदुषामपि ।
संप्रत्यविषयस्तस्य माहात्म्यं समभूद् भुवि ॥२॥

भावार्थ : कलिकाल जन्य मोह अज्ञानादि अन्धकारसे बुद्धि व्याप्त होनेसे यह दिव्य स्वरुपकी महिमा पृथ्वीमें वर्तमानमें विद्वद्जन भी न समज सके ऐसा हुआ है ॥ २ ॥

दयया निजमाहात्म्यं करिष्यन्प्रकटं हरिः ।
वाण्या यदा तदा स्वास्यं प्रादुर्भूतं चकार हि ॥३ ॥

भावार्थ:जब दयालुस्वभावसे श्री हरिकी स्पष्टरुपसे वाणीद्वारा स्वमहिमा समजानेकी कृपावृत्ति हुइ तब स्वमुखारविन्द रुप ऐसे महाप्रभुजीका (वल्लभका) स्वरुप प्रकट किया ॥ (३)

तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधं स्याद् यथा तथा ।
तन्नामाष्टोत्तरशतं प्रवक्ष्याम्यखिलाघहृत् ॥४॥

भावार्थ : श्री महाप्रभुजीका कहा समझमें न आवे ऐसा कठिन लगा उसे सुख बोध बनाने हेतु, समग्र पापोंके निवारण करने वाले श्री महाप्रभुजीके १०८ नाम कहुंगा । (४)

ऋषिरग्निकुमारस्तु नाम्नां छंदो जगत्यसौ ।
श्रीकृष्णास्यं देवता च बीजं कारुणिकः प्रभुः ॥५॥

भावार्थ : यह १०८ नाममंत्रके द्रष्टा ऋषि श्री अग्निकुमार गुसांइजी है । जगप्रसिद्ध अनुष्टुप छंद है । श्री महाप्रभुजी नाममंत्रके देवता है । दयालु प्रभु इन नाम मंत्र के बीज है । ॥५॥

विनियोगो भक्तियोगप्रतिबन्धविनाशने ।
कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिरत्र न संशयः ॥६॥

भावार्थ : श्री सर्वोत्तम स्तोत्रका विनियोग (उपयोग) भगवत्सेवामें प्रतिबंध आते है उसका निवारण करने हेतु है । सर्वोत्तमस्तोत्र पठनसे (पाठकरनेसे) श्री कृष्णचन्द्र के अधरामृत आस्वादरुप सिद्धि है इसमें कोइ शंशय (शंका) नही है ॥६॥

॥ श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र नामावलि: (संस्कृत) ॥

१ आनन्दाय नम: ॥
२ परमानन्दाय नम:
३ श्रीकृष्णास्याय नम: ॥
४ कृपानिधये नम: ॥
५ दैवोद्धारप्रयत्नात्मने नम: ॥
६ स्मृतिमात्रार्तिनाशनाय नम: ॥
७ श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणाय नम: ॥
८ साकारब्रह्मवादैकस्थापकाय नम: ॥
९ वेदपारगाय नम: ॥
१० मायावादनिराकर्त्रे नम: ॥
११ सर्ववादिनिरासकृते नम: ॥
१२ भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डाय नम: ॥
१३ स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमाय नम: ॥
१४ अङ्गीकृत्यैव गोपीश - वल्लभीकृतमानवाय नम: ॥
१५ अङ्गीकृतौ समर्यादाय नम: ॥
१६ महाकारुणिकाय नम: ॥
१७ विभवे नम: ॥
१८ अदेयदानदक्षाय नम: ॥
१९ महोदारचरित्रवते नम: ।।
२० प्राकृतानुकृतिव्याजमोहितासुरमानुषाय नम: ॥
२१ वैश्वानराय नम: ॥
२२ वल्लभाख्याय नम: ॥
२३ सद्रुपाय: नम: ॥
२४ सतां हितकृते नम: ॥
२५ जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृते नम: ।
२६ निखिलेष्टदाय नम: ॥
२७ सर्वलक्षणसम्पन्नाय नम: ॥
२८ श्रीकृष्णज्ञानदाय नम: ॥
२९ गुरवे नम: ॥
३० स्वानन्दतुन्दिलाय नम: ॥
३१ पद्मदलायतविलोचनाय नम: ॥

३२ कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टदासदासीप्रियाय नम: ॥
३३ पतये नम: ॥
३४ रोषदृक्पातसम्लुष्टभक्तद्विषे नम: ॥
३५ भक्तसेविताय नम: ॥
३६ सुखसेव्याय नम: ॥
३७ दुराराध्याय नम: ॥
३८ दुर्लभाङ्घ्रिसरोरुहाय नम: ॥
३९ उग्रप्रतापाय नम: ॥
४० वाक्सीधुपूरिताशेषसेवकाय नम: ॥
४१ श्रीभागवतपीयूषसमुद्रमथनक्षमाय नम: ॥
४२ तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितविग्रहाय नम: ॥
४३ सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेम्णे नम: ॥
४४ विमुक्तिदाय नम: ॥
४५ रासलीलैकतात्पर्याय नम: ॥
४६ कृपयैतत्कथाप्रदाय नम: ॥
४७ विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकाय नम: ॥
४८ भक्त्याचारोपदेष्ट्रे नम: ॥
४९ कर्ममार्गप्रवर्तकाय नम: ॥
५० यागादौ भक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशकाय नम: ॥
५१ पूर्णानन्दाय नम: ॥
५२ पूर्णकामाय नम: ॥
५३ वाक्पतये नम: ॥
५४ विबुधेश्वराय नम: ॥
५५ कृष्णनामसहस्रस्य वक्त्रे नम: ॥
५६ भक्तपरायणाय नम: ॥
५७ भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकाय नम: ॥
५८ स्वार्थोज्झिताखिलप्राणप्रियाय नम: ॥
५९ तादृशवेष्टिताय नम: ॥
६० स्वदासार्थकृताशेषसाधनाय नम: ॥
६१ सर्वशक्तिधृषे नम: ॥
६२ भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृते नम: ॥
६३ पित्रे नम: ॥

६४ स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्याय नम: ॥
६५ स्मयापहाय नम: ॥
६६ पतिव्रतापतये नम: ॥
६७ पारलौकिकैहिकदानकृते नम: ॥
६८ निगूढहृदयाय नम: ॥
६९ अनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशयाय नम: ॥
७० उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकाय नम: ॥
७१ भक्तिमार्गे सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृते नम: ॥
७२ पृथक्शरणमार्गोपदेष्ट्रे नम: ॥
७३ श्रीकृष्णहार्दविदे नम: ॥
७४ प्रतिक्षणनिकुंजस्थलीलारससुपूरिताय नम: ॥
७५ तत्कथाक्षिप्तचित्ताय नम: ॥
७६ तद्विस्मृतान्याय नम: ॥
७७ व्रजप्रियाय नम: ॥
७८ प्रियव्रजस्थितये नम: ॥
७९ पुष्टिलीलाकर्त्रे नम: ॥
८० रह:प्रियाय नम: ॥
८१ भक्तेच्छापूरकाय नम: ॥
८२ सर्वाज्ञातलीलाय नम: ॥
८३ अतिमोहनाय नम: ॥
८४ सर्वासक्ताय नम: ॥
८५ भक्तमात्रासक्ताय नम: ॥
८६ पतितपावनाय नम: ॥
८७ स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजविष्टराय नम: ॥
८८ यश:पीयूषलहरीप्लावितान्यरसाय नम: ॥
८९ पराय नम:
९० लीलामृतरसार्दार्द्रीकृताखिलशरीरभृते नम: ॥
९१ गोवर्धनस्थित्युत्साहाय नम: ॥
९२ तल्लीलाप्रेमपूरिताय नम: ॥
९३ यज्ञभोक्त्रे नम: ॥
९४ यज्ञकर्त्रे नम: ॥
९५ चतुर्वर्गविशारदाय नम: ॥

९६ सत्यप्रतिज्ञाय नमः ॥
९७ त्रिगुणातीताय नमः ॥
९८ नयविशारदाय नमः ॥
९९ स्वकीर्तिवर्धनाय नमः ॥
१०० तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकाय नमः ॥
१०१ मायावादाख्यतूलाग्नये नमः ॥
१०२ ब्रह्मवादनिरूपकाय नमः ॥
१०३ अप्राकृताखिलाकल्पभूषिताय नमः ॥
१०४ सहजस्मिताय नमः ॥
१०५ त्रिलोकीभूषणाय नमः ॥
१०६ भूमिभाग्याय नमः ॥
१०७ सहजसुन्दराय नमः ॥
१०८ अशेषभक्तसम्प्रार्थ्यचरणाब्जरजोधनाय नमः ॥

इत्यानंदनिधेः प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥३३॥

भावार्थ : इस प्रकार आनन्द निधि रूप श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के १०८ नाम प्रकट किये है । ॥३३॥

श्रद्धाविशुद्धबुद्धिर्यः पठत्यनुदिनं जनः ।
स तदेकमनाः सिद्धिमुक्तां प्राप्नोत्यसंशयः ॥३४॥

भावार्थ : इन नामों का श्रद्धा से विशुद्ध बुद्धि तथा एक चित्त से जो मनुष्य प्रति दिन पाठ करता है, वह पुष्टिमार्गीय मुक्ति की सिद्धि प्राप्त करता है इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।।३४॥

तदप्राप्तौ वृथा मोक्षस्तदाप्तौ तद्गतार्थता ।
अतः सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यं कृष्णरसार्थिभिः ॥३५॥

भावार्थ : श्रीमदाचार्यजी की कृपा से स्वमार्गीय फल की प्राप्ति न हो तो मोक्ष भी व्यर्थ है । इसलिए सर्वोत्तम स्तोत्र का जप श्रीकृष्ण के रस स्वरूप की प्राप्ति के लिये करना चाहिए । ॥३५॥

॥ इति श्रीमद्अग्निकुमारप्रोक्तं श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र नामावली संपूर्णा ॥

अनुक्रमणिका

		पान नंबर
१	युग और युगपुरुष	१
२	ज़न्म एवं ज़न्मस्थान	४
३	प्रारंभिक समय	८
४	विद्याध्ययन	११
५	लौकिक आचरण (व्यवहार)	१३
६	पर्यटन और उसका उद्देश	१७
७	बुनियादी तत्व एवं प्रग़ति	२०
८	सम्प्रदाय	२४
९	इष्टदेव	२७
१०	सम्मान	३१
११	जीव, जगत और ब्रह्म	३७
१२	सेवा के मार्ग	४१
१३	सांप्रदायिक भावना	४७
१४	सरल सिद्धांत	५२
१५	जगत और संसार का भेद	५६
१६	प्रचार-प्रवास	५९
१७	जीवन की वैविध्य लीला	६५
१८	साहित्यजीवन-नयी फसल	६९
१९	संप्रदाय के विकास स्तंभ	७४
२०	संप्रदायके प्रकाश पुंज	७७

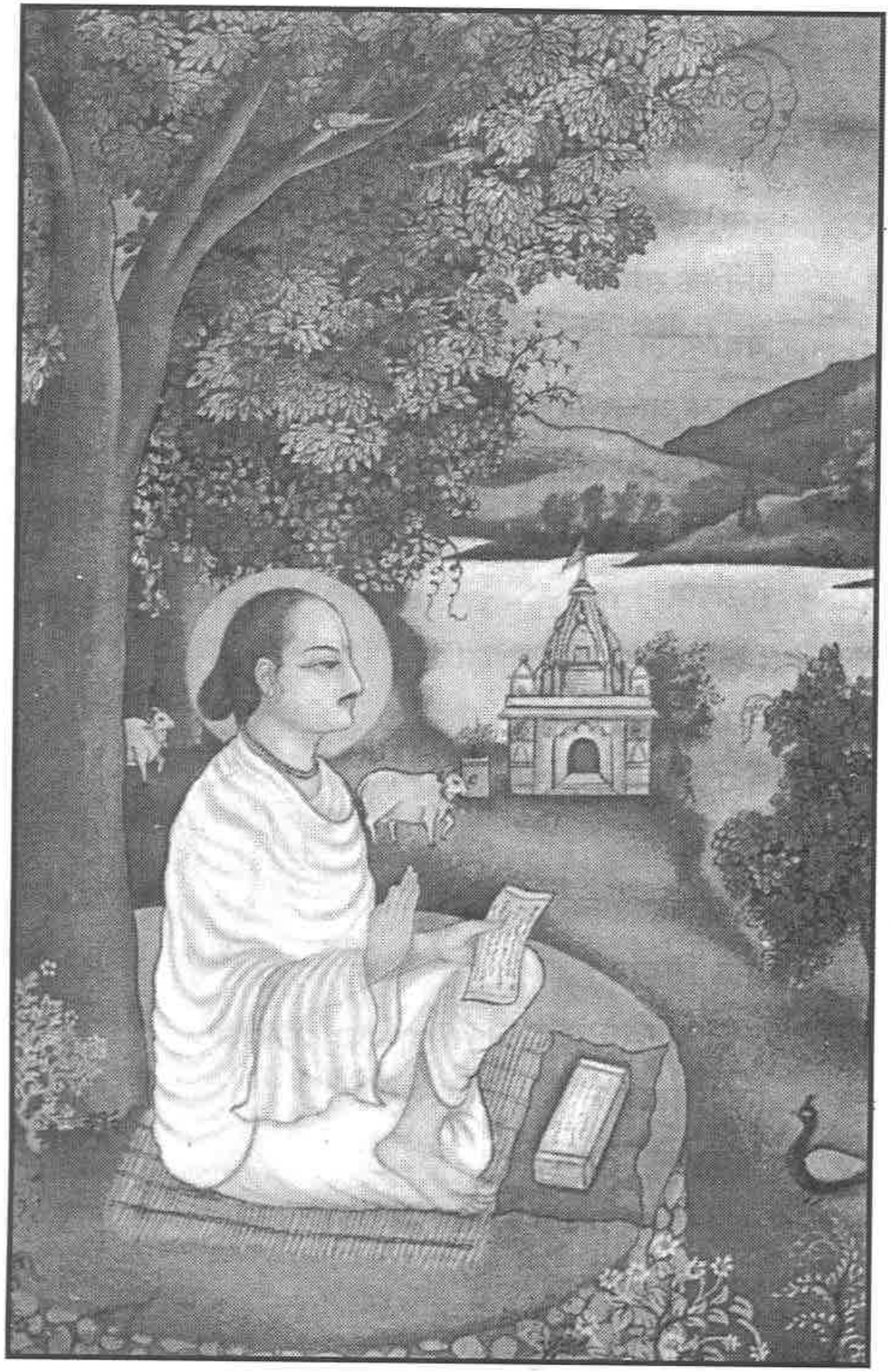

(१) युग और युगपुरुष

सोलहवीं शताब्दि में भारतमें अनेक आश्चर्यजनक परिवर्तन आये। इतिहास के पन्नोंमें राज़नीतिक परिवर्तनों के अनेक किस्से हम पढ़ पाते हैं । और जब सोलहवीं शताब्दिमें व्यापक राज़नैतिक परिवर्तन हुए, तब हमारे धर्मोंमें भी उन परिवर्तनों के कुछ तत्व विकसित ज़रुर हुए । राज़नैतिक परिवर्तनोंके संगसंग उल्लेखनीय धार्मिक परिवर्तन भी आये ।

तब हिन्दु समाज़ के हालात ड़ाँवाँड़ोल थे। मुसलमान शासक हिन्दु लड़कीयां अपहरण करने की कोशिश करते थे। हिन्दुओं को ज़बरन इसलाम धर्म अंगिकार करनेको मज़बुर करते थे। धर्मांध मुसलमान समाज़ अपनी सत्ता के नशेमें मदांध होकर इसलाम का प्रचार/प्रसार करनेमें लगा था। वह ऐसा समय था ज़ब हिन्दुओं की धार्मिक भावना को किसी भी तरह सुरक्षित रख पाना एक मुश्किल काम था।

इतिहास यह बात स्पष्टत: कहता है कि वह एक ऐसा समय था ज़ब देश राज़नीतिक, सामाज़िक व धार्मिक अराज़कताभरे हालात से गुज़र रहा था। यह तो सर्वविदित है कि ज़ब धर्मको क्षति पहुंचनेवाले हालात पैदा हो, तब इस भूमि पर पुन: अवतार लेने के लिये प्रभु वचनबद्ध हैं । ''जैसे गीताजीमें कहा है कि ''सम्भवामि युगेयुगे'' ।

उग्र संकटकालीन समय में काशी नग़रीमें रहनेवाले वेल्लनाडु तैलंग ज्ञाति के पवित्र ब्राह्मण, लक्ष्मण भट्टज़ीके घर उनकी धर्मशील व पतिसेवा पारायणा पत्नी इल्लमाग़ारुज़ीने एक पुत्ररत्नको ज़न्म दिया। जिसकी अद्वितीय महिमा सर्वत्र मानी गइ वह एक धन्य दिन था और रहेगा। यह पुत्रप्राप्ति एक अद्‌भूत घटना थी। यह अवतार कोई सामान्य अवतार नहीं था। किंतु, साक्षात ज़ग़न्नियंता प्रभुका धरती पर आगमन था। ज़िससे कि धर्मका विनाश रोका जा सके।

यह अवतार एक विशिष्ट अवतार था। शैशवकालसे युवा अवस्था तक पहुंचते पहुंचते तो इस प्रभुरुप अवत्तारी बालकने अपनी देवांशी प्रतिभा को अभिव्यक्त कर दिखाया। ऐसी बहुतसी मुश्किलें थी ज़िनके अलौकिक इलाज़ खोज़ दिखाये। अपनी पूर्ण शक्तियोंका विकास कार्यान्वियन कर दिखाया। और सर्वत्र हिन्दुत्वका प्रचार कर के धर्मकी विज़य पताका फ़हरायी।

ज़ब ज़ब कोई नूतन युगका उदय होता है, ज़ब नये युग़ का निर्माण अवश्यंभावि बन ज़ाता है, तब सर्वप्रथम युगनिर्माता महापुरुष की शक्तियां कीसी भी आम आदमीकी शक्ति से अनेक गुनी ज़्यादा होती है। उस शक्ति की बदौलत वह महापुरुष बहुत सारी मुश्किलों से कोई सरल रास्ता खोज़ निकाल त्रस्त लोगोंका उद्धार करते हैं ।

युग परिवर्तनकी ज़डे तब ज़मती हैं, ज़ब कोई ऐसा पुरुष दुनिया एवं समाज़ में अवतारित होता है; समाज़ एवं दुनिया दोनों ही उसके बताये हुए मार्ग़ पर चलकर सुख व शान्ति प्राप्त करते हैं, और लोग एसे महापुरुष द्वारा बताये गये आदर्शोको सूत्र मान कर उनका स्वागत करते हैं । ज़िन महान आत्माओं द्वारा युग़ परिवर्तन की ज़डें डाली ज़ाती है, वे-''युगपुरुष'' कहलाते हैं। ऐसे किसी युग़पुरुष दर्शित मार्ग का समाज़ अनुसरण करता है और ज़ो संस्कार विकसित होते हैं, उसे युगसंस्कार कहते हैं। और अपना संपूर्ण ज़ीवन समर्पित करकेज़ो देवांशी आत्मा ऐसे संस्कारका सिंचन करे उसकी सौरभ ज़हां तक प्रसारित होती रहे उस अवधिको ''युग़'' कहते हैं ।

युग नायककी भूमिका अदा करने के लिये ही लक्ष्मण भट्टजीके घर श्री प्रभुने अपने विशिष्ट स्वरुपमें अवतार लिया। अपनी एक न एक विशिष्टता तो युगनायक में होनी ही है। वर्ना समाज़ व दुनिया उन्हें अपना नेता कैसे मानेगी।

ज़ब पूरा ज़नसमाज़ असह्य वेदना से पीड़ित हो, ज़ब अपने स्वाभिमानका, सुखशांतिका अैर धार्मिक श्रद्धा तत्वोंका संरक्षण करने के लिये कोई भी साधन उपलब्ध न हो, तब समाज़ को एक ऐसे उध्धारक की, एक युग़नायककी तलाश होती है। जनसामान्य की नज़रें एक ऐसे महात्माको खोजती रहती हैं, एक ऐसी उत्कंठासे उनके आग़मन की प्रतीक्षा करती हैं, कि अंतमे ज़नताको मार्ग़दर्शन देने कोई न कोई युगपुरुष प्रग़ट होते ही हैं।

समस्त भारतीय जनसमाज सोलहवीं शताब्दि के प्रारंभ से ही पीड़ित था। ज़िस प्रकारका माहोल उन दिनों हिन्दुओंको परेशान कर रहा था, वह धीरे धीरे असह्य बनता ग़या। अंतमें, यह वातावरण एक ऐसी चरम सीमा पर पहुंच चूका था ज़बकी खुद प्रभुको भी प्रतीत हुआ कि विश्व ज़ो उन्होंने सर्ज़ित किया है उसमें निवास करनेवाले अनेक पवित्र आत्मा आज़ असह्य पीड़ा से त्रस्त हैं । अत: विक्रम संवत १५३५, (व्रज वैशाख-गुर्जर) चैत्र कृष्ण ११, रविवार के पावन दिन पुण्यप्रभावशीला माता श्री इल्लमाग़ारुजी ज़ब चंपारण्यकी यात्रा प्रस्थान पर थी, तब उन्होंने एक परम तेज़स्वी बालक को ज़न्म दिया। (कइ विद्वान संवत १५२९, चैत्र कृष्ण, ११, शनिवार को प्राग़ट्य दिन मानते हैं।)

उस बालक का प्रभुत्व, उसके देवांशी संस्कार व पवित्र ज़ीवनने सुचारु मार्गदर्शन देकर उस प्रतिकूल उत्क्रान्ति के समयमें धर्मकी रक्षा की। समस्त भारत उनका अनुसरण करने लगा। उनके धर्मोपदेश का ग़हन प्रभाव पड़ता था। ज़ो मार्ग उन्होंने बताया उस पर चल कर परम सत्य पाने के प्रयासमें लोग ज़ुट गये। बह युग़ भी उसी मार्गकी संस्थापनासे पहचाना ज़ाने लगा। वह युगपुरुष बालक थे - ''श्रीमद् वल्लभाचार्यज़ी''।

(२) ज़न्म एवं ज़न्मस्थान

इतिहास गवाह है की भारतमें क्षत्रियों के हाथ से राज़ सत्ता ज़ाने के बाद विविध मुसलमान शाशकोने भारत पर राज़ किया। मुग़लोंके हाथमें सत्ता आई इस से पहले ज़ो मुस्लीम शाशक थे उन्होंने हिन्दुओं पर बहुत जुल्म किये होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। हर चीज़ की एक सीमा होती है। बात ज़ब एक हद से आगे नीकल ज़ाती है, तब उसके निश्चित ही विपरीत परिणाम आते हैं। सुख के बाद दु:ख और दु:ख के बाद सुख, यह तो अनादि नियम है। उसी नियमानुसार ज़ो कष्ट हिन्दु प्रज़ाने सहे थे उनका अन्त भी अब नज़दीक दिख रहा था।

उस संकटकालीन समय में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थधाम वेल्लनाडु के एक तैलंग ब्राह्मण परिवार दक्षिण भारतसे आ कर काशीमें बसे थे। काशी के ब्राह्मणोंने उनका सुन्दर स्वागत किया। वे हमेशां धर्म और प्रभुसेवामें ही तन्मय रहते थे। वह धर्मात्मा पुरुष थे, श्री लक्ष्मण भट्टज़ी। उनका विवाह विद्यानग़र के राज़पुरोहित विद्वान ब्राह्मण सुशर्माकी सुपुत्री इल्लमागारुज़ी के साथ हुआ था। वे भी काशीमें पति के साथ रहकर उन्हें प्रभुभक्तिमें सक्रिय सहयोग देती रही ।

उनके पूर्वज़ अनन्य ईश्वरभक्त थे। उनमें धार्मिक व भक्तिमय संस्कार परम्परासे आये थे। उनके पूर्वजोमें पांचवी पीठीके पूर्वज श्री यज्ञनारायण भट्टजी थे। वे लम्बे अरसे तक ब्रह्मचर्य व्रत निभाते रहे। यूं वे अपने परिवार व आनेवाली पीढ़ीयों का बहुमूल्य कुलपरम्परा दे गये।

बहुत वर्षों तक ब्रह्मचर्य [illegible]नका पालन करने के बाद उन्होंने विवाह किया। गृहस्थी जीवन के उन दिनोंमें उनके यहां व[illegible] अतिथि पधारे। वें सन्यस्त ज़ीवन ही व्यतीत कर रहे थे। यज्ञनारायण भट्टने सन्यास पालन करने का कारण पूछा। उन्होंने कहा: अहर्निश हरिभक्ति कर पाउं इसलिए श्री भट्टजी धार्मिक परम्पराओमें ही पले थे उनके मनमें भी वैसी ही भक्ति करनेकी इच्छा ज़गी। अतिथिने भट्टज़ी को ग़ोपालमंत्र दिया। और वे श्री मदनमोहनज़ीकी सेवामें ज़ुट ग़ये।

इस तरह प्रभुभक्तिमें लीन होकर सेवाको व्यापक बनाने के लिये वे प्रति वर्ष सोमयाग करने लगे। इस तरहकी एकनिष्ठ भक्तिसे प्रसन्न होकर साक्षात भग़वानने प्रग़ट होकर उन्हें दर्शन दिये। उस समय उनके वंश की अति पवित्रताको अक्षुण्ण रखने के लिये उन्हें वचन भी दिया कि : 'तुम्हारे वंशमें एक सो यज्ञ पूर्ण होने पर मैं तेरे वंशमें अवतार लुंगा।'

यज्ञनारायण भट्टने ३१ यज्ञ पूर्ण किये। उनके बाद उनके पुत्र गंगाधर भट्टने २७ किये; उनके पुत्र ग़णपति भट्टने ३२ यज्ञ किये; उनके बाद उनके पुत्र बालभट्ट ने ५ और उनके पुत्र लक्ष्मण भट्टज़ीने ५ यज्ञ किये। इस तरह उस वंशमें सो (१००) सोमयाग़ परिपूर्ण हुए। अत: साक्षात भग़वानने ज़ो वचन दिया था उसकी आपूर्तिका समय आ पहुंचा।

अपने वतन से लक्ष्मण भट्टज़ी ज़ब काशी आये तब कृष्णदास शेठ नामके एक भक्त के घर रहे थे। उन दिनों देश पूर्णत: मुसलमान शासकों की हकूमतमें था। उन दिनों लक्ष्मण भट्टज़ीकी पत्नी सगर्भा थी। ज़ैसे ज़ैसे समय बीतता ग़या, वैसे वैसे शासकों के बढ़ते जुल्मकी बातें समस्त देशमें फ़ैलती गयी। एक दिन लक्ष्मण भट्टज़ी गंगास्नान करने

ग़ये थे। वहां उन्होंने मुसलमान सेना के ज़ुल्म और काशी पर होनेवाले आक्रमण की बातें सुनी। सो अपने धर्म के गौरव की रक्षा करने के लिये लक्ष्मण भट्टज़ीने अपने वतन वापस ज़ाना उचित समझा।

कृष्णदास के यहां से कइ सेवकोंको साथ लेकर वे अपनी धर्मपत्नी व माताज़ी के संग़ अपने वतन की और ज़ाने निकल पड़े। ज़ब वे लोग़ चंपारण्यसे ग़ुज़र रहे थे, तब लक्ष्मण भट्टजी तथा सेवकगण आगे चल रहे थे। सग़र्भावस्था होने के कारण भट्टज़ी की पत्नी पीछे रह गयी थी। वे धीरेधीरे चल रहीं थी। सो उभय पति-पत्नीके बीच अन्तर बढ़ ग़या था। इस बीच अति प्रवास के कारण इल्लमाग़ारुज़ी पीड़ा महसूस करने लगी। और शमी वृक्ष के नीचे बैठ ग़यी। और आठवें माहमे ही उन्होंने एक तेज़स्वी बालक को ज़न्म दिया। किंतु इस तरह अकालिक ज़न्म होने के कारण इल्लमाग़ारुज़ीने माना कि बालक मृत पैदा हुआ है। और वे नवज़ात शिशु को एक कपड़े में ढ़ँक कर वृक्ष की गुहामें रखकर शक्य इतनी ज़ल्दी आग़े चलने लगी। लक्ष्मण भट्टज़ी ज़ो आग़े निकल ग़ये थे, वे भद्रपुर गांव के पास उनके आने के इन्तज़ारमें एक ज़गह बैठे। कुछ समय बीत गया फ़िर भी वे नहीं पहुंची, तब भट्टज़ी उनकी खोज़ करने के इरादे से वापस ज़ाने की शोच रहे थे। तभी इल्लमाग़ारुज़ी वहा आ पहुंची और ज़ो कुछ घटा था वह बयान किया। वे सब स्नानादि से निपट कर आराम कर रहे थे, उस वक्त स्वयं भग़वानने दर्शन देकर लक्ष्मण भट्टज़ी से कहा: “मैंने पुष्टि मार्ग के प्रचारार्थ तुम्हारे यहां अवतार लिया है”। किंतु तुम लोग़ चंपारण्यमें ही मुझे छोड़कर यहां चले आये। अब आप मुझे साथमें लेकर काशी चलो। काशी वापस ज़ाओ और मुझे साथ ले लो। काशीसे मुसलमानोंका आतंक कम हो ग़या है और शांति व्याप्त है।”

यह संदेश लक्ष्मण भट्टज़ीने सबको कह सुनाया। लेकिन सेवकग़ण मुसलमानो के ड़र से वापस ज़ाने तैयार न था। अन्तमें यह निर्णय लिया गया कि अग़र सुबह तक ऐसे समाचार मिले कि अब मुसलमानों का ड़र नहीं रहा तो सब वापस फ़िरेंगे। दुसरे दिन सुबह

कृष्णादासने भेज़ा हुआ संदेशवाहक आ पहुंचा और उसने पूर्ण शांति के समाचार दिये। सबको तसल्ली हुई और वापस ज़ाने के लिये निकल पड़े। साक्षात भग़वानने दर्शन दे कर ज़ो वचन कहे थे उनमें अब काशीसे मिले समाचारोंने सबको विश्वास दिलाया। उन्होंने शमी वृक्ष के पास ज़ाकर देखा कि आसपास अग्निकी ज्वाला के बीच एक शिशु खेल रहा है । उसी वक्त इल्लमाग़ारुजी के स्तनों से दूध का स्राव भी होने लगा। और उन्हें तसल्ली हुइ कि बालक अपना हीं है ।

“यह बालक अपना ही है; मुझे अब पूर्ण विश्वास है।” इल्लमागारुजी ने लक्ष्मण भट्टज़ी से कहा। “अग़र यह बालक तुम्हारी कोख से पैदा हुआ है तो यह अग्नि भी तुम्हें मार्ग़ देग़ा। ज़ाओ और बालकको ले आओ।” लक्ष्मण भट्टज़ीने कहा।

इल्लमाग़ारुजी बालकको लेने ग़ईं। वे नज़दीक पहुंची तो आग्नि का पूर्ण तेज़ बालक में समाविष्ट हो ग़या। उस ज्योति से बालक और भी देदीप्यमान हो उठा। और उसमें देवांशी तत्वभी दिखने लग़ें। यह प्रमाणित हो ग़या कि बालक अग्नि का अवतार ही है।

(3) प्रारंभिक समय

सब यह देख कर चकित हो ग़ये। इस बालक की तेज़स्विता देख कर पूरा समुदाय प्रभावित हुआ। फ़िर भी उस वक्त वह बालककी विशिष्टता का अनुमान किसीको न हुआ। बालक स्वस्थ था और उसे लेकर वे सबने ज़ल्दी से काशीकी और प्रस्थान किया। उन्हें वापस आये देख कर कृष्णदास शेठ बहुत आनंदित हुए और उनका अच्छी तरहसे स्वाग़त किया।

बालक जन्म हुआ इसलिये ज्ञातकर्म संस्कार करना आवश्यक था। सो लक्ष्मण भट्टज़ीने काशीके बड़ेबड़े पण्ड़ित व विद्वानो को बुला कर यह संस्कार करवाने का निर्णय किया। पण्ड़ित लोग आये और वे भी बालककी प्रतिभा व तेज़स्विता से अति प्रभावित हुए। आवश्यक संस्कार विधि परिपूर्ण हुई और उन पण्ड़ितों की कृतज्ञता तब प्रगट हुई ज़ब उन्हें बालकमें साक्षात परमेश्वर के अंश दिखाई दिये। सो उस दर्शन से प्रभावित हो कर वे लक्ष्मण भट्टज़ीका धन्यवाद करने लगे।

“भट्टज़ी, आपने सचमें हमें धन्य किया है। आज हमारा ज़ीवन सफ़ल हो गया। हमें आपके बालकमें इश्वरका साक्षात स्वरूप देखने मिला। ज़ैसे मानों कि आपके यहां साक्षात परमात्माने ही ज़न्म लिया हो। “पण्डितोंने इन शब्दोंमें भट्टज़ी के प्रति अपना आभार व्यक्त किया.

यह सुन कर भट्टज़ी पुलकित हुए। अब उनके दिन भी उत्साहपूर्ण माहौलमें व्यतीत होने लगे। ज़िसके घर साक्षात इश्वरका ही अवतरण हो वहां कौन सा उत्सव न हो ? यह कल्पना भी कठिन है।

प्रति दिन सानन्द व्यतीत होता रहा। फ़िर नामकरण संस्कार का समय आ पहुंचा। विख्यात ज्योतिषीओंको बुलाया गया। ग्रहादि देख कर एक विशिष्ट नाम देने का निर्णय लिया ग़या। ज्योतिषीओने अपने अपने शास्त्रोंके आधार पर विविध नामों का सुझाव दिया। किंतु इश्वरीय संकेत पा कर सब पंडितगणने सर्व सहमति से ‘श्रीवल्लभ’ नाम पर अपनी स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् अति आनन्दसे बड़े शान से समारोह मनाया गया और बालक के नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ।

ज्योंज्यों बालक बड़ा होता गया, त्यों त्यों अपनी देवांशी चेष्टाओं के कारण वह जनसमाजको प्रभावित करता रहा। इस बालक के आचार विचार व वर्तनमें वह उसके समवयस्क अन्य बालकोंकी तुलनामें अनेक हज़ार गुना अनोखा था। यह बात स्पष्ट दिख रही थी।

यूं इस बालक की देवांशी प्रतिष्ठा कणकणमें प्रसारित होती ग़ई। आहिस्ता आहिस्ता दिन, माह और साल गुजरते गये। शुक्ल पक्षमें ज़िस तरह चंद्रकला दिन प्रति दिन निख़रती ज़ाती है, उस तरह यह बालककी बुद्धिमत्ता व प्रवृत्तियां भी निखरती गईं। श्रीकृष्णकी बाल चेष्टाओंकी भाँति ही श्री वल्लभ की भी ऐसी बहुतसी बालकथायें प्रचलित हैं ज़ो उनकी बाल्यकालीन प्रवृत्तियों को प्रमाणित करती हैं। आईए, हम उनके बालज़ीवन की कुछ ऐसी कथाओं पर दृष्टिपात करें ज़ो सत्य स्वरुप हैं।

धर्म व पवित्रता को प्रतिबिंबित करने सबब उन्होंने ज़न्म लिया। विश्वकी रुचिको धार्मिक साहित्यकी और मोड़ने के लिये वे सदबोध करते हैं। करीब पांच सालकी वयमें ही

वह बालक अपने पिता के पुस्तक संग्रह से एक पुस्तक लेकर उसका अवलोकन करने लगा। पुस्तक के अनेक पृष्ठोंमें से कुछ चुने हुए पृष्ठों पर ही बालकने नज़र ड़ालनी शुरु की। ज़ब श्री लक्ष्मण भट्टज़ी बाहर से घर आये तब उन्होंने देखा कि बालक एक पुस्तकका अध्ययन कर रहा था। किसी भी व्यक्ति के लिये यह विस्मय की बात थी कि कोई एक विशिष्ट पुस्तक खंड़के पठनमें पांच सालकी वय का इस बालक का प्रकार प्रवेश हो। यह बात कोई ग़हन संकेत इंगित करती थी। लोग़ भी इस बालकको देवांशी कहते थे। उस तथ्यकी अब उन्हें प्रत्यक्ष प्रतीति हुई। उनके मनमें यह विश्वास पक्का हो गया कि बालकमें दैवी तत्व है।

समयके साथ तथ्य ओर भी सुदृढ़ होता ग़या। अन्य बालसखाके संग़ यह बालक खेलकूद में भी शरीक होता था। खेलमें भी वह अपना प्रभाव व्यक्त करके साथी बालकोंमें धार्मिक संस्कार उज़ाग़र करता रहता। श्रीमद् भाग़वत के रासक्रीड़ा अध्यायकी बालकोमें ऐसी रुची उत्पन्नकी कि बालकग़ण भी खेलकूद भूल कर नाचने-ग़ाने लग़ा। यह स्थिति सिर्फ़ रुचि उत्पन्नकी मानवीय प्रभाव द्वारा संभवित न थी।

लक्ष्मण भट्टज़ी को कृष्णदासने एक गाय भेंट दी थी । एक दिन उस गायका देहांत प्रतीत हुआ। उसकी मृत्यु पर कृष्णदास, लक्ष्मण भट्टज़ी व परिवार के सदस्यों को बहुत दुःख हुआ। परिवारज़नो के ऐसे हालात देख कर बालक भी उद्विग्न हुआ। सबको शोकमुक्त करने के ध्येय से बालकने गायके पास ज़ाकर उसे हाथ लग़ाया । बालक के स्पर्शसे ज़ैसे नींद से उठती हो वैसे ग़ाय पलभरमें ज़ाग्रत हुई। यह देख कर सब परिवारज़न आश्चर्यचकित हो गये। उनको अब पूरा विश्वास बैठा की बालकमें इश्वरीय तत्व है।

सारे गांवमें यह बात धीरे धीरे फ़ैल ग़ई। लोगोंने इस बालक के बारे में और भी चमत्कारी बातें सुनी थी। यह बालक इश्वरावतार होनेका अब पूरा विश्वास हो गया। वे भी इस घटना से चकित हो चूके थे।

यू इस बालकने अपने ज़ीवन के प्रारंभ से ही अपनी प्रभुता के चिह्न किये थे।

(४) विद्याध्ययन

इश्वर भी इस धरती पर ज़ब मानव स्वरूप धारण करते है, तब उन्हें अपनी सर्व शक्तियों से परे हो कर सामाज़िक परिसरमें रहना पड़ता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह इश्वर मिट कर आदमी बन ज़ाता है। मानव स्वरूप धारण करने के पीछे भी ठोस कारण होते हैं। वह एक ज़टिल प्रश्न है कि अगर मात्र अपने ऐश्वर्य का ही वह प्रदर्शन करता रहे तो समाज उसे स्वीकारेगा या नहीं ? वो भी अलग बात है कि कभीकभी वह अपना प्रभाव दिखा कर अपने लक्ष्य व प्रताप को अभिव्यक्त करे। हालाँकी अवतारी पुरुषोंको भी सृष्टिके नियमानुसार चलना पड़ता है। लक्ष्मण भट्टज़ीके घर ज़न्म लेनेवाले इस बालक की पांच वर्षकी आयु हुई तब उसे भी रिवाज़ अनुसार उपनयन संस्कार करने का अवसर आया। यह एक अलौकिक बालक है और स्वाभाविक है कि उसके मातापिता ऐसा अवसर अति भावपूर्ण ढंग से और बड़ी शानसे मनाये। प्रकांड विद्वानोंकी उपस्थितिमें प्रसंग अच्छी तरहसे विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ।

उसके बाद बालकका विद्याध्ययन शरू हुआ। बाल्यकालसे ही उनका विद्याप्रेम, विद्याके प्रति लग़ाव एवं उसके प्रचारकी भावना झलक रही थी। वह परंपरा है कि उपनयनके बाद विद्याभ्यास का प्रारंभ हो। उपनयन संस्कार में पिताजीसे ग़ायत्री मंत्रकी दीक्षा ली। उस पश्चात विष्णुचित उपाध्याय से यज़ुर्वेद अध्ययन किया। तिरुमल आचार्य से ऋग़वेद व साम़वेद, नारायण दीक्षितने उन्हें व्याकरण वा सांख्य-मीमांसा का अध्ययन कराया। माधवेन्द्र यति के पास श्रीमद् भागवत, गीताज़ी इत्यादिका गहन अध्ययन किया।

इस तरह अनेक विद्वानों से विविध शास्त्र व पुराणोंका अभ्यास आपश्रीने सिर्फ़ छ सालमें ही पूर्ण कर लिया। शास्त्रार्थोमें नैपुण्य प्राप्त किया। ज़ो बालक़ इतने कम समयमें शास्त्रों पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता हो उसे अलौकिक न कहे तो ओर कया कहा ज़ाय ? ऐसे बालक को अभ्यास कराने का सौभाग्य पाने के लिये विद्यागुरुगण अपने आपकों भाग्यशाली मानने लगे। उनके एक अनोखे अवतार होने का यह बहुत बड़ा प्रमाण था कि ऐसे प्रकांड आचार्य भी उन्हें एक महान विभूतिके रूप में स्वीकार करने लगे थे।

अपने सहाध्यायीओमें तो वे अग्रणी हो यह बात सीधी-सी है। वे अपने साथ पढ़नेवाले छात्र बंधुओंको ''शुद्धाद्वैत'' भक्तिमार्गकि प्रमुख तत्व बड़ी ग़हराई से समझाने लगे। कम उम्रमें एक आचार्यसे भी अच्छे तरीकेसे वे अन्य सहाध्यीयीओं को गहन सिद्धांत बड़ी सूझबूझ के साथ समझाते रहे। इस लिये श्री वल्लभ वन्दनीय रहें।

कभीकभी काशीके पण्ड़ितों की सभाओंमें भी वह अपना दर्शन बड़ी शांतिके साथ प्रस्तुत करते। और अपने सिद्धांत काफ़ी विश्वसनीय ढ़ंग से पेश करते। पौगंड वयमें ही उनकी यह क्षमता देख कर बड़ेबड़े विद्वान उन्हें 'वाक्पति' व 'बाल सरस्वती' के उपनाम से संबोधित करने लगे। विद्वद्वर्गमें उन्हें बहुत आदर से देखे जाने लगे। वे भी उन्हे पूज़नीय मानने लगे।

इस तरह श्रीवल्लभने अपने मत के प्रचार की नीवं ड़ाली।

(५) लौकिक आचरण (व्यवहार)

बाल्यवय एवं अभ्यास काल बीतने के बाद भारतीय संस्कृति के विविध सिद्धान्तो का अध्ययन करके उन्होंने बहुत कुछ कर दिखाया है। उसके बाद दीर्घकाल पर्यन्त उन्होंने अलग़ अलग़ दिशाओमें एवं अलग अलग तरीके से अपने मत का प्रचार किया और - 'पुष्टिमार्ग' के नाम से अपने विशाल भावुक संप्रदायमें आश्चर्यमय ढ़ंग से उसे प्रस्थापित किया। किंतु, उसकी बात विस्तारपूर्वक कहने से पहले इस दुनियामें व्यतीत हुए उनके व्यावहारिक ज़ीवन को हम अपनी लौकिक द्रष्टि से निरख लें। इस मार्गमें निहित अलौकिक तत्वोंका विवरण द्वारा अवलोकन करना वो अनुभूति एवं प्रेरणा दोनों से अभिभूत होने के बराबर है। उनके लौकिक ज़ीवनको पहचानने के बाद ही उनके अलौकिक तत्वांश को स्पर्श करने का अधिकार पानेके काबिल हम बनते हैं।

ज़ो कोई भी उस महापुरूष के इहलौकिक ज़ीवन को आध्यात्मिक दर्शन से परख नहीं सकता; जो मनुष्य उनके लोकोत्तर धर्मकी तह तक पहुंचने के काबिल मानसिक

स्थिति प्राप्त नहीं कर सकता एवं उसे समझने के लिये ज़िज्ञासु बन नहीं सकता, उसे उन ग़हन तत्वों को छूनेका अधिकार भी नहीं है। पुष्टिमार्गकि अंतरंग़ तत्वों को समझने के बारेमें हम सब अभी बाल्यावस्थामें ही हैं। नासमझभरी अवस्थामें बदहज़मीके सिवा और कुछ हाथ न लगा पायेग़ा। और सो, आकाशमें उड़ने के बज़ाय लौकिक स्तर पर ज़ीना तथा इस दुन्यवी रंग़मंच पर अपनी अपनी भूमिका पूर्णत: अदा करना और आहिस्ता आहिस्ता अपने आपको ग़हन तत्वों को समझनेकी स्थितिमें ले आने के बाद ही उस महापुरूष द्वारा प्रसारित पारलौकिक तथ्यों पर चिन्तन करना ज्यादा उचित होगा। उसीमें अपनी समज़शक्ति व दिमाग़ी कसौटी है कि हम उनके लौकिक ज़ीवनका रेखाचित्र पूरी तरह परखें और उसके पश्चात आग़े बढ़ें।

कइ वर्षों के बाद अपने पूरे परिवारके साथ श्री लक्ष्मण भट्टज़ी दक्षिण भारतकी यात्रा के लिये नीकले थे । और बालाज़ी आ पहुंचे । लेकिन तब उनका स्वास्थ्य प्रतिकूल लगा। उन्हें महसूस हुआ कि अब उनका अंतिम समय आ पहुंचा है। उन्होंने अपने परिवारज़नों को पास बुलाया और अपने देवांशी पुत्र से कहा: ''तुम एक विशिष्ट आत्मा हो। तुम्हारे मनोविचार इस लौकिक दुनियासे बहुत उंचे हैं। फ़िर भी, मैं तुम्हें याद दिलाउं कि बड़ेबड़े महापुरूषों को भी इस ज़ग़त के प्रलोभन लुभाते हैं। हालाँकि, तुम्हें न कोई सूचना व न कोई सलाह देनेकी ज़रूरत है। फ़िरभी, जगतमें प्रलोभन इतने हैं कि उनसे बचके रहनेके बारे में तुम्हें आग़ाह किये बिना मैं अपने आपको रोक नहीं सकता।''

महापुरुष श्री वल्लभने अपने पिताकी बातको सर-आंखो पर मान कर उसका स्वीकार किया। उसके बाद श्री लक्ष्मण भट्टज़ीने अपने शोक संतप्त परिवारज़नों के साथ साथ अपनी धर्मपत्नीको भी दो शब्द कहे: ''मेरा कर्तव्य यहीं समाप्त होता है। तुम्हें अभी कुछ देखना और करना बाकी है। सो तुम मेरे पीछे आनेकी जल्दी न करना। जो कुछ भी करना बाकी है वह करकें ही आना। मैं तुम्हारा इन्तज़ार करुंगा।''

इतनी बात कह कर श्री लक्ष्मण भट्टज़ी का तेज श्री बालाजी में विलीन हुआ। श्री बालाज़ीमें अपने अंतिम समय पर साक्षात प्रभुदर्शन का लाभ उन्हें अपने पुत्र के रूपमें प्राप्त हुआ यह भी कम सौभाग्यकी बात न थी।

यूं तो सर्वविदित है कि ज़ो आता है, उसे एक दिन जाना ही है। फ़िरभी, किसीके मृत्यु से उद्वेग़ होता ही है । उसकी भी विपरीत असर होती है । अनिष्ट भी होता है । यह बात सामाज़िक परिवेशमें जब तक अच्छी तरह समज़ायी नहीं ज़ायेगी, तब तक समाज वही बेढ़ंगी सफ़्तार चलता रहेगा।

परिवारको विषादग्रस्त देख कर उस महापुरूषने लक्ष्मण भट्टज़ीके आत्माकी प्रसन्नता के लिये प्रसन्न वातावरण बनाया, सबको शांत किया, और उन्होंने अपने दिवंगत पिताकी उत्तर क्रिया भी शास्त्रीय ढंग से परिपूर्ण की। फ़िर लौकिक व्यवहारोंका ध्यान रख कर पूरे बारह मास तक उन्होंने पिताका श्राद्ध इत्यादि भी किया । इस तरह संयम पूर्वक अपना कर्तव्य निभाने का संदेश वे ज़गतको देते रहे।

अपने पिताकी संवत्सर विधि पूर्ण करने के बाद परिवारज़नों की गया-श्राद्ध करनेकी भावनाका भी उन्होंनें आदर किया । और अपने बड़े भाई, माताज़ी तथा छोटे भाईको वहां भेज़ दिया। जब वे सभ ग़याज़ी जाने की तैयारी कर रहे थे, तब वे खुद माताज़ी और बड़े भाई की अनुमति लेकर भारत पर्यटन पर निकले। कोई भी अवतारी आत्मा कभी

अपने इश्वरीय अंश को अहंकारपूर्वक प्रदर्शित नहीं करता। हर एक महापुरूष सिर्फ़ अपने ज़ीवनको एक आदर्श दृष्टान्त के रूपमें छोड़ जाते हैं। बात स्पष्ट है कि उनके ज़ैसे पुरूष अपने मातृ-पितृ प्रेम एवं परिवार प्रेम के उदाहरण द्वारा अनुयायीओंको आदर्श जीवन जीनेका तरीका दिखाते हैं। ताकि अनुयायी भी उस तरह जीवन बसर कर पायें।

अपना सारा ज़ीवन संप्रदायके प्रसारमें, धार्मिक तत्वोंके विकासमें और अपनी ज़ीवनयात्रा सार्थक करनेके हेतु से उन्होंने पैदल चल कर तीन बार अखिल भारतवर्षकी यात्रा की। इस यात्रामें बहुत कार्य किये और अपने प्राय: सभी उद्देश्य सिद्ध किये। यूं धर्म और नीतिके लिये उन्होंने गृहस्थीमें प्रवेश करने के बज़ाय अपने ब्रह्मचर्यका पालन किया। ब्रह्मचर्यके उस दौरमें उन्होंने गृहस्थी ज़ीवनका अनोखा उपदेश दिया है।

ज़ब ज़ब ऐसा लगा कि समाज़ गलत राह पर ज़ा रहा है, तब तब उन्होंने समाज़को अपने ही द्रष्टान्त द्वारा सम्बोधित किया है। उनके सदोपदेशके तत्व धीरे धीरे उनके वचनामृत द्वारा पुष्टिमार्ग के सिद्धांतोके रूपमें परिणत हुए है। वै अपने आपमें भगवद्स्वरुप होने पर भी विद्वानोंका बहुत ही आदर करते थे। और ज़ो कुछ भी ग्रहणीय हो वह ज़रूर ग्रहण करते थे।

उनके ज़ीवन तत्व केवल पुष्टिमार्गकि अनुयायीओंके लिये ही नहीं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनुकरणीय है।

(६) पर्यटन और उसका उद्देश

केवल भारतमें ही नहीं, किन्तु संपूर्ण विश्वमें जब ऐतिहासिक, सामाज़िक व धार्मिक कार्यक्षेत्रमें महापुरूष पैदा होते हैं, तब उनके ज़ीवन व्यवहारमें और उनकी कार्यप्रणालीमें कुछ गहन तत्व देखने मिलते हैं। उनके प्रग़ट होने के लिये भी विशिष्ट अंतर्निहित उद्देश रहते हैं। कई विशिष्ट अवसर पर अनूठे रुपमें ऐसे महापुरुषोके दर्शन होते है एवं ऐसे समयमें ही उन भगवत तेजयुक्त विशिष्टावतारों का पधारना भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

वे लोग अपनी प्रारंभिक वय से ही अपनी फ़र्ज़ व अपनी ज़िम्मेदारियोंका खयाल रखते हैं। यह भी संभाव्य है कि उस खयालके कारण उनमें शारीरिक व चैतसिक शक्तियां आम आदमीकी तुलनामें ज्यादा विकसित रहती है। महान आत्मा कम उम्रमें किसी विशिष्ट प्रकारकी सिद्धि प्राप्त कर दिखाते है। तो वह महज़ एक काल्पनिक किस्सा अथवा चमत्कार नहीं होता। मनुष्य जीवनकी आयुष्यावधि कम होने के कारण उनके ज़ोशमें एवं उनकी कार्यशैली में विशिष्टता रहती है। ज़ो लोग उन सिद्धियोंकी बातों को महज़ अतिश्योक्ति मानते हैं वे गंभीर गलती करते हैं।

इतिहास के पन्नों पर छोटी उम्र से ही वीरताका सिलसिला प्रतिपादित करनेवाले नरबंको की दास्तानों की कोई कमी नहीं है। उनकी सर्वशक्ति अपनी मातृ भूमिको विदेशी धुरा से मुक्त कराने की तमन्नामें उसीके प्रचारार्थ व्यय होती रही। उनके अनुयायी हम देख न पाते हों, फ़िर भी बाल्यवय के उनके पराक्रमों से ही उनकी अदभुतता प्रतिपादित होती है। इस तथ्य का इतिहास साक्षी है। इन्ही पराक्रमों के कारण वे विश्वमें प्रसिद्धि प्राप्त कर अमर हो गये। उनकी ऐतिहासिक गाथाओ में कहीं कुछ भी शंका का अवसर ही नहीं है। एक कारण है उसका और वह यह की उनके पराक्रमों की सुवास आधुनिक युग़ तक फैली हुई है।

कभी कभी समाज़ में अनिष्ट हरकतें इस कदर बढ़.जाती हैं कि उन्हें किसी भी तरह मिटाना अनिवार्य हो ज़ाता है। ऐसे वक्त छोटी उम्र का ही कोई प्रतिभावान महामानव ज़ब तक पैदा न हो और समाज़को उसके भीतर छिपे अनिष्टों से मुक्त न कराये एवं क्रांतिकारी विचारधारा प्रचलित न करे तब तक वही रफ़्तार बेढ़ंगी चलती रहती है। ऐसे समय में उस क्रांतिकारी आत्मा के लिये अपने मन व सिद्धांतो का प्रचार एवं प्रसार करना आवश्यक हो ज़ाता है। ज़ब तक वह आवश्यकता परिपूर्ण नहीं होती तब तक मानना रहा की कोई ऐसा महापुरुष पैदा हुआ ही नहीं।

समाज़के बिग़ड़े स्तरको सुधारने ऐसे महापुरूषोंकी ज़रूरत होती है। और उनके द्वारा प्रस्थापित सिद्धांतोका प्रचार कार्य ज़ितना ज़ल्दी आरंभ हो उतना हितकारी है। ज़ब धार्मिक भावना संकट के दौर से ग़ुज़र रही हो तब यह विशेष ज़रूरी बन ज़ाता है। भारतवर्षके इतिहास में धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता आया है। और उसी कारण आज़ हज़ारों वर्षों बाद भी कुछ सिद्धांत अक्षुण्ण प्रस्थापित रहे हैं। युगोंके परिवर्तन पश्चात भी धर्म का प्रवाह बहता रहेता है। बहुत से अच्छे सुधारों की ज़ड़ में धर्म ही है। और उस धर्म के संरक्षणार्थ कोई ऐसा नर प्रग़ट हो ज़ो बाल्यकाल से ही अपनी प्रतिभा का प्रमाण देने लगे तो उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

अग़र मनुष्यके ज़ीवन में धर्मतत्व ज़ैसी कोई भावना ही न हो, तो परिणाम कैसे अनिष्ट आते हैं, वह हम निरंतर देखते हैं। बिना धर्म मानव ज़ीवन निरर्थक है। ज़ब धर्म में भी सड़न व दुराचार दिखाई देने लग़ते हैं, तब यह ज़रूरी हो ज़ाता है कि उसमें सुधार लाया ज़ाय अथवा उसे पूर्णत: नये स्वरूप में ढ़ाला ज़ाय । ऐसे समय में कोई अवतारी पुरूष पैदा हो और बाल्यकालसे ही अपना कार्य शुरू कर दे, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । बल्कि, ऐसी विशिष्ट व्यक्ति का कार्यकाल ज़ितना ज़ल्दी आरंभ हो, उतनां ज़न सामान्य को उसका लाभ ज़ल्दि मिल सकेगा।

इतिहास बहुत कुछ दर्शाता है। घटनाएं, सामाज़िक परिस्थितियां एवं धार्मिक हालात। श्रीमद् वल्लभाचार्यज़ी एक ऐसे ऐतिहासिक काल में प्रग़ट हुए ज़ब देश व धर्म संकट के दौर से ग़ुज़र रहे थे। छोटी उम्र से ही उन्होंने अभ्यास का प्रारंभ किया। और ज्ञान प्राप्त किया। भारतवर्षकी पवित्र भूमि पर ज़न्म धारण कर शीघ्र ही उन्होंने अपना कार्य शुरू किया। पूरी शक्ति उसमें लगा दी।

ऐसे समय एक स्थल पर वास करके समस्त देश में युग परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। तब प्रवास करके प्रचारार्थ विभिन्न स्थानों मे परिभ्रमण आवश्यक बनता है। प्रवास के माध्यम से अपने प्रतिपादित सिद्धांतो का प्रसार करना उपयुक्त होता है। और उस कार्य में सरल दिनचर्या, सच्चरित्र व्यवहार, संयमी जीवन इत्यादि गुणोंकी भी ज़न मानस पर बहुत ग़हरी छवि अंकित होती है। करीब सोलह साल की वयमें ही श्रीमद् वल्लभाचार्य भारतभरमें प्रचार अभियान पर निकले थे।

उस यात्रामें उनका लक्ष्य सभी धर्मो का अर्क ग्रहण कर उनके समन्वय द्वारा सत्य को उसके तथ्यात्मक स्वरूप में पाना था। प्रवास द्वारा उस आशयको वे सिद्ध कर पाये। ज़ो भी उन्हें उचित लगे उन सिद्धांतो को छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ उन्होंने अपनाये। और उनका प्रचार वे करते गये। कहीं कहीं इसी कारण उन्हें वाद विवाद में भी उतरना पड़ा। ऐसे विवादो में अपना मत प्रतिपादित करके अपने सिद्धांतो के प्रसारका एक बड़ा लक्ष्य प्राप्त कर पाये।

(७) बुनियादी तत्व एवं प्रगति

पुष्टिमार्ग की स्थापना श्रीमद वल्लभाचार्यजीने की। ग़हन अध्ययन मीमांसा एवं विचार विनिमय के पश्चात अपने द्वारा निर्मित सिद्धांतो को प्रतिपादित करने के बाद ही यह संभव हुआ। फ़िर उन सिद्धांतो के प्रचार कार्य का उन्होंने प्रारंभ किया। पुष्टिमार्गकि इन मूलभूत सिद्धांतो की गणना किसी महात्मा की वैचारिक फ़लसफ़ी के रूप में नहीं होनी चाहिये। बल्कि, उस शाश्वत मौलिक विचारधारा का आविष्कार है जो हकीकत में आज़ तक अप्रकट रही थी। श्रीमद् वल्लभाचार्यजीने परिश्रमपूर्वक ग़हन अभ्यास के बाद सुसंचालित तरीके से उसे खोज निकाला। उनकी तथ्यात्मकता पर ग़हरा चिंतन किया और अपने सिद्धांतोके समर्थन में उन मंतव्यों का पूर्णत: विकास किया ज़िस से की वे प्रभावशाली प्रकारसे प्रस्थापित हो पाये।

मानवीय संदेहशीलता के कारण ऐसी आशंका उद्भवित हो सकती है की जो प्रमाण पुष्टिमार्गकि समर्थन में प्रस्तुत किये गयें हैं वे मूलत: ही अधूरे व बेबुनियाद हो...तो? इस आशंका का निवारण है। जिन सिद्धांतो पर पुष्टि सम्प्रदाय स्थापित है वे कच्ची धातु के मानिंद थे। धरती के गर्भ में सदीयों का कीचड़ धातु पर ज़मा होता रहता है। लेकिन उसे उत्खनन द्वारा बाहर निकाल कर स्वच्छ करने पर उसकी असल चमक दिखायी देती है। जो कुछ भी क्षतियां थी उन्हें परिमार्ज़ित कर के सिद्धांत जो प्रस्तुत किये गये उन्ही की बुनियाद पर पुष्टिमार्ग का सर्ज़न हुआ। फ़लत: यह कहा जा सकता है की पुष्टिमार्ग के सिद्धांतो की ज़ड़ें सदीयों पुरानी हैं। परंतु उन्हे पुनर्जिवित करके उनका प्रचार/प्रसार करनेकी ही आवश्यकता थी।

अब उन सिद्धांतो को समझने के लिये हमें इतिहास के ग़र्भ में थोड़ी नज़र ड़ालनी होगी। दक्षिण भारतमें पांड़व विज़य नामका एक पराक्रमी राजा था। उसका मंत्री ब्राह्मण था। मंत्रीके यहां पुत्र जन्म हुआ। उसका नाम विष्णु रखा। वह शिशु ज्योंज्यों बड़ा होता गया, उसकी समझ शक्ति बड़ी तीव्र होती गई। वह विविध तरीके से सोचने लगा। 'मैं मेरे पिताकी तरह होउ तो? मेरा पिता तो राजा का सेवक है। मैं अपने पिता से बड़ा बनुंगा। मैं राजा बनुंगा। किंतु, हाल जो हमारा राजा है वह बड़ा ही पराक्रमी है जिसमें अहमकी बदबु है। उसे लगा की राजा पांडव विजय से बड़ा होने के लिये उसे कुछ और करना होगा।

उसने देवत्व पाने की सोची, विविध देवताओ के बारे में सोचा। उनमें से किसी एकको अपना आदर्श बनाने की ठानी। किंतु हर देवता में कुछ न कुछ क्षति दिखाई दी। आखिर उसने सोचा की वह सर्वोच्च पद प्राप्त करे। लेकिन सर्वोच्च पद पर आसन्न किसे आदर्श माने? विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने के उद्देश से उसने वेद उपनिषद आदि धर्मग्रंथो का सहारा लिया। अन्त में वह एक नतीजे पर पहुंच ही गया कि इष्ट सर्वेश्वरको प्राप्त करुंगा।

अब उसने अपने प्रयास सर्वेश्वर कोटि तक पहुंचने के लिये लगा दिये। उसने वे सब साधन एकत्रित किये जो सर्वेश्वर की सेवा के लिये उपयुक्त थे। दिन-रात उन साधनों की सहाय से वह शृंगार, भाव इत्यादि क्रियामें व्यस्त रहने लगा। एक धुन, एकही तमन्ना उसके मन में थी ।सर्वेश्वर की सही शक्ति परखने की। अपने दिनरात वह सेवा कार्यो मे व्यतीत करता रहा।

किंतु उसे तनिक भी महसूस नहीं हुआ की सर्वेश्वर उसके द्वारा भोग धरी हुई सब चीजों का अस्वीकार कर रहे है। इस बातने उसे व्याकुल कर रखा था। तब उन्होंने अकुला कर एक व्रत ले लिया। कि वे किसी भी हालात में सर्वेश्वर का साक्षात्कार करेंगे। वे अनशन पर बैठ गये। उन्होंने प्रण लिया कि ज़ब तक साक्षात्कार नहीं होगा तब तक वे पानी भी नहीं लेंगे।

अनशनमें छह दिन यूं बीते। अनशन के कारण उसका शरीर शिथिल होता गया। फ़िर भी सर्वेश्वर उसकी ओर देखते हो ऐसे आसार दिखाई नहीं दिये। वे हतोत्साह होने लगे। फ़िर भी अपने संकल्प पर अड़े रहे। उनका निर्णय अटल था। कैसे भी हालात में उन्होंने सात दिन तक अनशन ज़ारी रखा। और यह भी निर्णय किया की अग़र आज़ भी साक्षात्कार न हो और उनकी सेवा स्वीकार न हो तो वे आखिरकार देहत्याग करेंगे।

यह संकल्प देख कर स्वयं सर्वेश्वर भी असमंज़समें आ गये। आखिरकार सर्वेश्वरका साक्षात्कार हुआ। विष्णुस्वामीने उन्हें सर्व साधन व चीज़ों का उपभोग करते हुए भी देखा। किंतु, तब उनके मन में एक और शंका पैदा हुई। शास्त्रो में तो सर्वेश्वर का वर्णन निर्गुण के रूप में दिया ग़या है। और यहां वह सगुण नज़र आ रहे हैं। ऐसा क्यों? उन्होंने अपनी यह आशंका सीधी सर्वेश्वर के आग़े रख दी। और यह भी कहा की इस कारण से वे उनका सर्वेश्वर के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। तब सर्वेश्वरने उन्हें अपने बारे में विश्वास रखने को कहा। फ़िर भी शंका का समाधान न होने पर वेद-उपनिषद इत्यादि व पौराणिक ग्रंथो से द्रष्टान्त इत्यादि प्रस्तुत करके यह प्रमाणित किया की वे और कोई नहीं पर सर्वेश्वर ही हैं। विष्णुस्वामीने इस तरह सर्वेश्वर का साक्षात्कार प्राप्त किया। फ़िर वे अपनी सिद्धिओं का प्रचार करने में लग़ गये। पुष्टिमार्ग का प्रारंभ इस तरह हुआ। यह बात अब इतिहास प्रसिद्ध हो चूकी है। उनके बाद बिल्वमंगलाचार्यने उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतो का परिपालन कर उनके प्रचार कार्य को आग़े बढ़ाया। पुष्टि संप्रदाय के सिद्धांत वैदिक एवं पौराणिक शास्त्रार्थों पर स्थापित है यह तथ्य यूं प्रमाणित होता है।

श्री वल्लभाचार्यने अपने संप्रदाय की स्थापना करने से पहले श्री बिल्वमंगलाचार्यजी के पास इस विषय का ग़हन विचार विमर्श किया। फ़िर उसमें कुछ नवीन तत्व ज़ोड़ कर उसे और विकसित किया। उनके सम्प्रदायका प्रसार हो इस उद्देश से उन्होंने पूरे देश में प्रवास किया। प्रवास से भी कुछ प्राप्ति हुई। इन सब पर विशेष चिंतन-मनन करके अपना अलौकिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

अब यह इतिहास सिद्ध बात है की पुष्टिसंप्रदायकी विचारधारा में वैदिक, मौलिक व मूलभूत सिद्धांत निहित हैं।

(८) सम्प्रदाय

श्रीमद आचार्यचरणने उन सिद्धांतो को संकलित किया जो की उनके गहन अध्ययन व वैचारिक मंथन से उत्पन्न हुए थे और एक अलग संप्रदाय का प्रचार शुरू किया। इस संप्रदाय का प्रसार भारत में चहु दिश हुआ । उसे खूब सत्कार भी मिला। कइ लोग उसे 'शुद्धाद्वैद' सिद्धांत व 'ब्रह्मवाद', व 'भक्तिमार्ग' व 'पुष्टिमार्ग' कहने लग़े।

इस संदर्भ में एक छोटा सा सूत्र संप्रदायका उद्देश व उपदेश दोनोंको स्पष्ट करता है : ईश्वर कृपा अर्थात पुष्टि। ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग पुष्टिमार्ग।

दो रास्ते हैं इ़ष्ट प्राप्ति के। एक पुष्टि द्वारा, दुसरा मर्यादा द्वारा, पुष्टि और मर्यादा दोनो भिन्न मार्ग हैं। तुलनात्मक दृष्टि से अग़र दोनों के मंतव्य एवं तत्वों को परखा ज़ाय तो पुष्टिमार्ग ही श्रेष्ठ दिखता है । पुष्टिमार्ग में समाविष्ट है दैन्य, ईश्वर सेवा और निष्काम भक्ति। ज़ब की मर्यादा मार्गमें अन्य ही तत्व व मंतव्य निहित है।

अपने इष्ट की प्राप्ति साधनो द्वारा पाना अर्थात मर्यादा। यज्ञ, दान, तप इत्यादि ज़ो भी इष्ट प्राप्ति क़े लिये काममें लिये ज़ाय उन्हे 'साधन' कहते हैं। उसका मतलब यह होता है की इष्ट प्राप्ति के उद्देश से इक तरह की मर्यादा अंकित की गई है। कोई एक सिद्धि

प्राप्त करने के लिये कोई एक साधना करनी पड़ती है। यह है मर्यादा मार्ग। पुष्टि के मूलभूत सिद्धांत, सरल भाषा में व स्पष्टत: समझाये गये हैं। उनमें मर्यादित साधनों की ज़रूरत नहीं पड़ती। किंतु, उन मर्यादित साधनों को उच्च भावनाओं से अलंकृत करके उनमें छिपी हुई संकीर्णताओ को मिटा दी गई है।

पुष्टिमार्ग का प्रथम सिद्धांत है निष्काम सेवा। अर्थात किसी भी प्रकार के फ़ल की इच्छा रखे बिना ईश्वरकी सेवा करनी। फ़ल प्राप्ति की इच्छासे जो सेवा की जाती है उसमें एकनिष्ठा नहीं आती। फ़लस्वरूप, उसमें क्षति रहती ही है।

दुसरी बात यह है की आराधना विश्व कल्याण के हेतु से की जानी चाहिये। समस्त विश्व के लिये कल्याणकारी भावना उसमें निहित होनी चाहिये। सबब, वहां निजी स्वार्थ व लाभ पाने के लिये भक्ति नहीं होती। किंतु, वैश्विक कल्याण के हेतु से भक्ति की जाती है। यही तो सच्ची आराधना है। फ़िर, शत्रु हो या मित्र, सब के कल्याण की कामना की जाती है। इस आराधना में कीसी प्रकार असंगति भेदभाव नहीं होता।

तिसरी बात है ईश्वर के प्रति धनिष्ठ आसक्ति की। ईश्वरमें आसक्त रहने का मतलब है प्रति पल ईश्वर भक्ति में तन्मय रहना। ज़ो कुछ भी ईश्वर द्वारा सर्जित है उसमें उसीका ही अंश है। ऐसे कोई भी सज़्ज़नके प्रति किसी प्रकार का मिन्न भाव न रख कर संतुलित नजर से देखना उसीका नाम है, ''आसक्ति''। ऊँच व नीच का भाव जहां उजागर न हो और न छोटे व बड़े का खयाल हो। ऐसी भावना जहां अभिव्यक्त हो, वहीं ईश्वर के प्रति सच्ची आसक्ति प्रमाणित होती है। चौथा सवाल सेव्य और सेवक के बीच वह 'सख्य' भाव पैदा करना है जो की अव्याभिचारी भाव सदृश होता है। ऐसी भक्ति को अदूषित कहा जाता है। अदूषित भक्ति का उद्देश अपने एक ही प्रियपात्र के प्रति पूर्णत: आसक्त रहना होता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार के समर्पित भाव से आसक्ति में क्रमश: वृद्धि होती रहती है।

पुष्टिमार्ग वेद, श्रीमद् भगवद् गीता, व्याससूत्र और श्रीमद् भागवत को स्वत: प्रमाण महाग्रंथ मानता है। अन्य जो भी ग्रंथ उनके मार्गानुगमन पर प्रतिबद्ध हे। उन्हें भी

प्रमाणित माने जाते हैं। उपर दर्शाये गये चारों प्रमुख ग्रन्थोंको ‘प्रस्थान-चतुष्टय’ कहते हैं।

इस अनन्य आसक्ति के संदर्भमें अब हम ऐतहासिक दृष्टान्तों को देखें। पौराणिक समय में कश्यप नामके एक मुनि थे। उनकी पतिव्रता पत्नींका नाम था, दिति। पत्नीकी अनन्य सेवा से प्रसन्न ऋषिने उनसे वर मांगने के लिये कहा। तब उन्होंने सिर्फ़ एक ही वर मांगा : इन्द्रादि देवोने मुझे बहुत कष्ट दिये हैं। तो आप मुझे एक ऐसा पुत्र दिजिये जो इन्द्रको पराजित करे। ऋषिने वरदान तो दिया। पर साथसाथ कुछ नीति नियमों का पालन करनेकी हिदायत भी दी। फ़िर ऋषि पत्नी सगर्भा हुई। ऋषिने यह भी कहा था की अगर नियम पालन में किसी प्रकार की क्षति हुई तो परिणाम विपरीत होगा। संयोग से कहीं कुछ क्षति आ ही गई। और इन्द्रने गर्भ प्रवेश करके वज्र से गर्भ के ४९ टुकड़े कीये। किंतु, एक भी अंश का नाश न हुआ। तब उसे ईश्वरकृपा का अनुमान हुआ। इस दृष्टान्त से ईश्वरका अनुग्रह पुष्टिमार्गकि मूल तत्वों का ही समर्थन करता है।

मुग़ल युग में राजा मानसिंघ नामक एक राजा था। उस जमाने में प्रभु भक्ति परायण परम भक्त कुंभनदास राजा मानसिंघकी रियासत की सीमा में रहते थे। वे अच्छे संगीतज्ञ थे। किंतु, उनकी कला थी सिर्फ़ प्रभु भक्ति के लिये। वे श्री महाप्रभुजीके सेवक थे। वे बहुत गरीबीसे गुज़र रहे थे। उनके पास तिलक करने के लिये आयना भी न था जलमें अपना प्रतिबिंब देखकर तिलक करते थे। यह देख कर राजा को आश्चर्य हुआ। राजाने इक थैलीमें सुवर्ण मुद्रायें रख कर उन से अनुरोध किया कि वे उसे स्वीकार करें। किंतु, कुंभनदासने उस अनुरोध का अस्वीकार किया। उनका कहना था कि यह दीनता हीं उनकी सब से बड़ी दौलत है। फ़िर भी राज़ाने उनसे कुछ मांगने का अति-अनुरोध किया। तो प्रभु भक्तने कहा: जो कुछ भी वे संगीत के माध्यम से प्रस्तुत करते थे उसे ईश्वर का नाम लेकर सुनें। और प्रभु का नाम लेते रहें।

यहां दिये गये इन इतिहास सिद्ध दृष्टान्त निष्काम भक्ति के श्रेष्ठ दृष्टान्त हैं।

(९) इष्टदेव

मानव अपने शरीरमें जब दैवी संस्कार प्राप्त करता है, तब कुछ ऐसे चिन्ह दिखाई देते हैं जो प्रथम तो छोटी छोटी बातो में प्रगट होते हैं। लेकिन जिस इन्सान में शुरू से ही अपने विशिष्ट संस्कारोंके प्रति अहम् की मात्रा दिखाई देने लगती है वह अपनी मानवता भी गवा बैठता है। छोटी बातों मे भी ज़िसका माधुर्य बरकरार रहता है वह अनायास भी तेजस्विता बिखेरता है और उसका प्रभाव जन सामान्य और जन समाज पर भी पड़ता है। उस प्रभावको परखने व उसका अवलोकन करने के लिये भी एक खास दृष्टि की जरूरत होती है।

जिन प्रतिभाओंका अवतरण महान कार्योंके लिये होता हैं वे कभी ऐसी छवि जन मानस पर अंकित नहीं होने देते की वे स्वयं महान हैं। उनका आचरण सदा विनम्र रहता है। और इस तरह अपने प्रभुत्व को वे उजागर करते हैं। तथा विश्व को सच्चे सुख की राह दिखाते हैं।

'मैं तो सिर्फ़ दूध का ही सेवन करूंगा। अन्न तो मेरा बल्लभ स्वयं आकर देंगे तब वही ग्रहण करुंगा।' यह शब्द श्री गोवर्धन पर्वतसे सुनायी दिये। उस गोवर्धन पर तब भारत के एक महास्वामी श्रीमाधवेंद्रयति पधारे थे। पर्वत पर एक प्रतिमा थी। और उसकी अलौकिकता के बहुत बखान उन्होंने सुने थे। सो वे दर्शन करने आये। प्रतिमा का सौंदर्य देख कर वे मंत्रमुग्ध हो गये। और उनके मनमें प्रतिमा के चरणों में कुछ भोग धरने की इच्छा हुई। सो उन्होंने इस लिये जरूरी प्रबंध किया।, किंतु तब यह देव बानी सुनाई दी।

श्री माधवेन्द्रयतिजीको बडा आश्चर्य हुआ। इस प्रतिमा की दैवी शक्तिके प्रति उनके मन में और भी आदर पैदा हुआ। जो कुछ, उन्होंने सुना उसकी मूल तक जाने की उत्सुकता हुई।

सदुपाण्डे नामक ब्राह्मण तब वहां हाज़िर थे। 'पाण्ड़ेजी, मूर्ति तो सच ही अलौकिक है।' यतिजीने कहा।

'हां, महाराज।'

'ऐसी अलौकिक मूर्ति के सर्व प्रथम दर्शन किसे हुए थे।' स्वामीने पूछा।

'पक्का कहना तो मुश्किल है, महाराज। पर संभवत: मेरी गाय को प्रथम दर्शन हुए थे।'

'हां.....? यह कैसी बात है? यह हुआ कैसे?'

'महाराज, बात बहुत अज़ीब है। यू तो मेरी एक हज़ार गाय है। उनमें एक यह गाय ही एसी भागयशाली है। वह बहुत अच्छा दूध देती थी। लेकिन कुछ दिन बाद उसने दूध देना बन्द कर दिया। हम सब सोच में पड़े। हमें संदेह हुआ की शायद अंधेरे में कोई दुह जाता होगा.....।''

'अच्छा।'

'हां जी, वैसा बहुत दिन तक होता रहा। फ़िर बात क्या है वह जानने के लिये एक दिन मैं पीछे पीछे गया। जब वापिस लौट रहा था तब देखा की वह गाय एक पेड़के पीछे खड़ी थी। और वहीं वह अपना सारा दूध बहा रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ।'

'वही जगह थी?'

'जी, हां। मैं जब वापिस उस जगह गया तब मुझे प्रभु के मुखार्विंद के दर्शन हुए। मैं धन्य हो गया।'

'पण्डितजी आप बडे भाग्यवान है।'

'फ़िर प्रभुजीने मुझे आज्ञा दी की मैं हर रोज दूध भेंजा करूं।'

'अरे वाह। महत अनुग्रह लेकिन, पाण्ड़ेजी, इसके अलावा क्या इस स्वरुप प्रागटय का असल स्थान भी आप जानते हैं ?'

'बात अब मेरी समझ में आ गयी है।'

'क्या?'

'कइ वर्ष पहले इस पर्वत से एक भुजाजी का प्राकटय हुआ था। व्रज के यात्रीओने उस भुजाजी का दर्शन किया था। उसकी पूजा भी की थी। दूध-अक्षत भी धरे थे। तब से सब उस भुजाजीकी पूजा करने लगे थे। उसके बाद कुछ गाय आदि पशु जो पहले दूध नहीं देते थे वे भी दूध देने लगे थे।'

'अच्छा।'

'व्रज वैशाख (गुर्जर चैत्र मासके) कृष्ण पक्षमें एकादशी के दिन मुखारविन्द के पुन: दर्शन हुए थे।

'ओहो महत्-आश्चर्य '

इस कथामें यतिजीने काफ़ी दिलचस्पी दिखाई । और अन्त में वे दूधका भोग धराकर चले गये ।

'हे वल्लभ, मैं तेरे आने का इन्तजार कर रहा हुं । व्रज में आकर सेवा शुरू कर ।' एक दिन उस महान विभूतिने झारखण्डमें यह आवाज सुनी ।

यह आवाज सुनकर श्री बल्लभाचार्यजी 'व्रजमें पधारे व सदुपांडे के वहां वैठे ।

तब बैठते हि उन्होंने आवाज सुनी । नरो दूध ले आ ।

'यह आवाज़ तो झारखण्ड में मैने सुनी थी उस आवाज से मिलती-जुलती है ।'

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को अनुभूति हुयी । वे तत्काल पेयकी तलाश में नीकले । वहां उन्होने श्रीमुखारविन्दके दर्शन भी किये । मन बहुत पुलकित हुआ । फ़िर उन्होंने उस ज़गह एक छोटा सा मंदिर बनवाया और सेवा का प्रारंभ किया ।

''चौहाणजी, अब मैं आगे जाउंगा । यह स्वरुपको ही अपना सर्वस्व मानो अब आप इस स्वरूप की सेवा इत्यादि पूरे भावपूर्ण ढंग से करना ।'' अपने एक क्षत्रिय सेवक रामदास चौहाण को इतना आदेश देखकर श्रीमदाचार्यजी आगे की कार्यवाहीमें प्रवृत्त होने के लिये नीकले ।

आश्चर्य इस बात का है की श्री वल्लभ के प्राकटयोत्सव के दिन हि श्रीमुखारविन्दका प्राकटय होना है यह भी एक संकेत हो सकता है ।

(१०) सम्मान (सन्मान)

विश्व में सद्गुण सर्वत्र व्याप्त है । कुछ विशिष्ट प्रकारके सद्गुण ज़ब जन सामान्य की दृष्टि में बस जाते हैं; तब उनकी कद्र प्रत्येक मनुष्य द्वारा होती है। उसके पीछे भी आदमी अपना कुछ कल्याण होने की आशा तो रखता ही है । यह एक स्वाभाविक मानव प्रकृति है । और जब आदमी अपने आसपासमें ऐसी कोई प्रतिभा को देखता है, तब उससे अपने उत्थान की आशा लगाये बैठता है, श्री बल्लभाचार्यजीने तो बाल्यकाल से ही अपनी विशेषताका परिचय दिया था । स्वाभाविक था की उनके प्रति समाज़ में सम्मान भाव प्रारंभ से ही पैदा हो । उनका स्थान अपने युगके महापुरूषो में स्थापित हो चूका था । उनके प्रति समाज के बहुत बड़े वर्गका रुख उस प्रकारका ही था ।

भारतवर्ष के लोग सद्गुणकी पूजा करते हैं । जब सद्गुण प्रकाश में आते हैं और उनके कारण जनता के मन में अपने कल्याण की आशायें बंधती हैं, तब वे ओर भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं । जो महान व्यक्ति हैं वे तो अपने आचरण व प्रतिभा से अपनी छवि अंक्ति करते रहते हैं । उनकी महानता जन्मजात होती है । वे बड़प्पन नहीं दिखाते । लेकिन

उनकी महत्ता अपने आप ही दिखाई देती है। जो बड़प्पन प्राप्त करने के लिये छटपटाते रहते है वे आजीवन कोशिश करने के बावजूद भी कुछ नहीं पाते।

युग तो परिवर्तनशील है। लेकिन जो प्रतिभायें सबके कल्याणके लिये पैदा हुई है उनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। भारतमें आदरणीय महानुभावों का सदा सम्मान होता आया है। हर युग में होता है। आज भी हम उन्हें सम्मान भाव से देखते हैं। किंतु, पाश्चात्य प्रदेशों के आचार विचार हमारे यहाँ कुछ विकृतियां पेदा करते है इनके बावजूद भी भारतीय संस्कृति अविकृत रही है। जो सम्मान के योग्य हैं उनकी पूजा होती ही है। सदीयों पहले भी होती थी, आज भी होती है। श्रीमदाचार्य जैसी विभूति समाजके लिये और धर्मके लिये कल्याणकारी प्रवृत्तियां करती रहती हैं। धर्म संरक्षण के कार्य भी उनके हाथों सदा होता रहता था। और उन कार्योंकी भरपेट सराहना भी होतीथी।

श्रीमद् वल्लभ एक ऐसी प्रतिभा थे जो आर्य संस्कृतिकी ज्योति प्रज्वलित रखने के लिये पैदा हुए थे। हिंदूत्वकी रक्षा उनके अंतरात्मा का आदर्श था। जब कठिन समय था तब भी हिंदूत्वकी पताका उन्होंने फ़हराये रखी। हिंदूत्वके प्रचार द्वारा वे शांतिका संदेश फ़ैलाते थे तबसे उनकी व्यक्ति पूजा का प्रारंभ हुआ।

बाल्यकाल से ही उनमें जो चमत्कारिता थी वह दिखाई देने लगी थी। उससे समस्त भारत वर्ष प्रभावित होता था। पण्डितों की सभाओं में बाल्यकाल से ही उनका सन्मान होता था। जैसे समय बीतता गया वैसे उनके गुणोंकी कथायें चहुँ दिश फ़ैलती गयी। और इतिहास उल्लेख करता है की भक्त लोगों के दिलमें उनके बोध वचन अंकित हो चूके थे। सद्गुण की पूजा गुणीजन ही करते हैं। तेजोद्वेषी तो उसे गिराने के प्रयासोमें ही व्यस्त रहते हैं।

पण्डितों की संगति से श्री वल्लभको आदर प्राप्त हुआ, जबकी आचार्यो से मेल जोल के कारण वे उनकी प्रशंसा भी प्राप्त कर सके । प्रवास द्वारा उन्होंने तत्वप्रचार किया। व्यक्ति पूजा तो वहां भी होती थी। महापुरुष प्राकटय जन कल्याण के उद्देश से ही होते हैं। विश्व भी उनसे कुछ कल्याणकारी संस्कार पाने के लिये उत्सुक रहता है। स्वभाविक था कि मानव समुदाय इस विभूतिका पूर्ण सम्मान के साथ स्वागत करे। ऐसी दैवी प्रतिभाओं में अनेक प्रकारके कष्ट एवं दुदर्शायें मिटानेकी क्षमता होती है। उनकी ऐसी चमत्कारी शक्तियों के कारण उनकी हमेशां पूजा होती है।

विनम्र भाव से अपनी पूजा व प्रशंसाओंका स्वीकार करते हुए वह युगपुरुष दक्षिण भारत की और अपनी तीसरी यात्रा पर पधारे। इस यात्रा में उनकी इच्छा विद्यानगर स्थित अपने मामा सोमेश्वर पण्ड़ित के घर जाने की हुई। जब वे अपने शिष्यगण के साथ उस नगरीकी ओर चले तो ख़बर तुरन्त फैल गई। और सोमेश्वर पण्ड़ित को भी उसकी जानकारी हुई। पण्ड़ितजीने नगरमें उनका उचित स्वागत करने के लिये एवं सम्मान के लिये पूर्ण प्रबंध किये। पूरे आदर सम्मान के साथ उन्हें पण्ड़ितज़ीके घर ले जाया गया। सब उनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। सारे विद्यानगरमें आनंदका वातावरण बना।

विद्यानगर दक्षिण भारत का एक बहुत बड़ा साम्राज्य था। उसका दुसरा नाम था, विजयनगर, यह विशाल साम्राज्य विद्या, कला, धर्म और तत्वज्ञान कौशल्य व नीतिमत्ता इत्यादि अनेक गुणों से समृद्ध था। इन गुणों का वहां पूरी तरह सम्मान भी होता था। इतिहास इस बातका गवाह है। कृष्णदेव उस नगर के राजा थे। वे गुणज्ञ एवं प्रतापी थे। गुणीजनों की कद्र करते थे। उनकी सभा में सदा विद्वान महापुरूष उपस्थित रहते थे। श्री बल्लभकी आंतरिक इच्छा थी की एक बार विद्यानगर में जाय।

शय कृष्णदेवकी राजमाता मध्वसम्प्रदायी सेविका थी वे कृष्णदेवको भी इस सम्प्रदायानुयायी बनाना चाहती थी व राज्यमें भी इस सम्प्रदायका प्रचार/प्रसार हो ऐसा उस सम्प्रदायाचार्यजी श्रीव्यासतीर्थजी चाहते थे । जिसका विरोध शांकर मतानुयायी पंडितोने किया । इस कारण चर्चा निश्चित हुइ । दोनो पक्ष आमने सामने आये व विशिष्ट शास्त्रार्थके निर्णय हेतु मेधावी पण्डितोको मध्यस्थीके रूपमें वरण किया । राजा कृष्णदेवने सब का आदरपूर्वक स्वागत कीया। वे पण्ड़ितों की परिचर्चा बड़े ध्यान से सुनने लगे। काफ़ी गहन चर्चा होनेके बाद भी शांकर पण्ड़ितोने वैष्णव पण्ड़ितो के आगे घुटने नहीं टेके। अंतमे, वैष्णव पण्ड़ितो को ही पराजय स्वीकार करना पडा।

उस देश की प्रजा भी अच्छी तरह से शिक्षित व सुझ थी । जब नतीजा प्रकाशित हुआ तो उसे लेकर लोगो में भी बहुत चर्चा होने लगी। उस चर्चाके कारण विवाद के मूल से ले कर वैष्णव पण्ड़ितों के पराजय तककी पूरी बात श्री बल्लभ तक पहुंची। वैष्णवी विद्वानों के पराजयकी बात सुन कर प्रथम तो श्रीबल्लभको दु:ख हुआ। किंतु, कुछ देरके बाद अपने एक शिष्यको भेज कर उन्होंने कहलवाया कि यह निर्णय योग्य नहीं है। वैष्णवी मतके समर्थन के लिये वे स्वयं आ रहे हैं। उन्हें अवसर दिया जाय; वे चर्चा के लिये तैयार हैं। शिष्यने यह संदेश दरबार में जा कर सुनाया। सुन कर राजा कृष्णदेव प्रसन्न हुए। श्री बल्लभके बारे में उन्होंने बहुत सुना था। अब वे पधार रहे है। खुशी होनी स्वाभाविक है।

राजा कृष्णदेवने उन्हे चर्चा के लिये सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया। जब श्रीबल्लभ सभामें पधारे तब राजा स्वयं एवं सब पण्ड़ितोने खडे हो कर उनका स्वागत किया। उनकी अपनी तेजस्विता से सभामें विशिष्ट वातावरण बन गया। उनके ज्ञान व उनकी प्रतिभा से सब प्रभावित थे, शंकराचार्यने अपने आधे आसन पे बैठाये। वे आमने सामने चर्चा के लिये उपस्थित थे फ़िर भी एक-दुसरे का आदर करते थे। उसके बाद चर्चा शुरू हुई। श्री बल्लभने शांत स्वरमें और सरल भाषामें प्रतिपक्ष के मन्तव्योका विरोध किया। इस कार्य में वे बहुत सफल रहे। कभीकभी तो जिस ग्रंथो के आधार पर प्रतिपक्ष अपनी दलीले रखता था उन्हीं ग्रंथो से उध्धरण ले कर वे उन दलीलोंको काट देते थे। विवाद ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों त्यों श्री बल्लभ सरलतापूर्वक प्रतिपक्षकी दलीलों को काटते गये। इस कारण वहां हाज़िर पण्ड़ितों मे एवं राजा कृष्णदेवके मनमें भी उनके प्रति सम्मान भाव बढ़ता गया। अंतमें, प्रतिपक्ष अपनी दलीलों को समेट लेने के लिये तैयार हो गया।

इस तरह शांकरमत का खंड़न होता देख कर सोमेश्वर पण्ड़ित दु:खी हुए। उन्होंने श्रीबल्लभसे आखिरी विवाद करने की ठानी। आहिस्ता आहिस्ता अपने ज्ञान व अपने कौशलसे श्री बल्लभ उन्हें भी मात कर पाये। जब सबने देखा की अंतीम जंगमें सोमेश्वर पण्ड़ित भी पराजित हो गये, तब श्री बल्लभ के विजय का सबने स्वीकार किया। श्रीकृष्णदेवने निर्णायक सभा से अंतिम निर्णय पूछा। सभाने एक स्वरमें श्री बल्लभकी प्रशंसा की। और उनको विजेता घोषित किया। इस तरह बड़े बड़े विद्वानों को पराजित कर के इस ब्रह्मचारीने अपने मतकी विजय पताका फ़हरायी। उनका सम्मान अब कैसे करना वह राजा एवं प्रजाजनोंकी शोचका विषय बन गया।

सभाने यह निर्णय लिया की श्रीबल्लभ का बहुत आदरपूर्ण सम्मान किया जाय। राजा कृष्णदेवने उस प्रस्ताव का स्वीकार किया और श्री बल्लभका कनक अभिषेक करने का निर्णय लिया गया।

कई इतिहासकारोंका कहना है की अभिषेक के स्थान पर सुवर्णतुला दान हुआ था। भारतीय इतिहास के पन्नों में १५३५ के वर्ष में दो विशेष प्रसंगो का उल्लेख है। एक श्री

बल्लभ का प्रागटय और दुसरा उसी दिन श्रीगोवर्धनधारी श्रीनाथजीका प्राकटय। यह दोनों प्रागट्य एक ही दिन होने मे सेवकों की सेवा का महत्व देखा जा सकता है। इतिहास यह भी कहता है की यह वह समय था जब देश राजकीय व धार्मिक विषमताओं से गुजर रहा था। उन विषमताओंका निदान करनेमें जिनका योगदान था उनका सम्मान तो होना ही था।

सभा में विजय प्राप्त करने हेतु राजा कृष्णदेवने श्रीवल्लभाचार्यजीका कनकाभिषेक किया। उस वक्त राजा कृष्णदेवने श्री बल्लभके सामने ढेर सारी सुवर्ण मुद्रायें रखदी, श्रीवल्लभने तब उनका विनम्रतापूर्वक अस्वीकार किया। फ़िर भी, जब राजा कृष्णदेवने अति-आग्रह किया तब श्रीबल्लभने सात मुद्राओंका स्वीकार किया। अन्य मुद्रायें दान में दे दी। उन मुद्राओंका भी उपयोग आगे जा कर श्रीनाथजीके सिद्ध कराये। इस से श्री बल्लभ की त्याग भावना प्रमाणित होती है।

चर्चा में विजय प्राप्त करने पर मध्व संप्रदाय के श्री व्यासाचार्यजी श्रीवल्लभाचार्यजी पर बहुत प्रसन्न हुए। वे श्री बल्लभको अपने स्थान पर ले गये। और अपने सम्प्दायकी सूत्रधारा अपने करकमलोमें ले कर प्रचार प्रसार करने का अनुरोध किया। किंतु, उनका यह प्रयास असफ़ल रहा। यह एक प्रमाण है की श्री बल्लभ पूर्णत: धर्मनिष्ठ थे।

उस समय उन्हें दो पदवीसूत्र भी प्राप्त हुए थे : ''अखिलभूमंडलाचार्यवर्य'' और 'दिग्विजयी' श्रीबल्लभाचार्य के दिग्विजयका इतिहास इस तरह अपने आपमें विशिष्ट है।

(११) जीव, जगत और ब्रह्म

किसी भी प्रकारके महान कार्यका प्रारंभ करने से पहले उसके पीछे कुछ रचनात्मक प्रयास भी करना पड़ता है। उन प्रयासों का गहन निरीक्षण करने से उसका महत्व समज में आता है। जो मौलिक मूलभूत तत्व हैं उन पर भी विचार करना पड़ता है। अपने वंदनीय आचार्यश्रीके कार्य संदर्भमें निहित सुंदर एवं रचनात्मक तत्वों का स्वरूप भी हम बहुत सरलता से समज पाते हैं। और इस प्रयासमें उनके कार्योकी पवित्रता एवं महानता के प्रकाश में हम अपने आत्मा पर भी उच्च तत्वोंकी अमर छवि अंकित कर सकते हैं।

इस महान आत्माने अपने अध्ययन, चिंतन व मनन के फलस्वरूप जो भी अमर दर्शन करवाया है वह तो शुद्ध सुवर्ण के समान है। उन्होंने दिया हुआ 'तत्वार्थदीप' उचित मायने में ग्रहण किया जाय तो उसका तत्वार्थ हमारे हृदय को गहरे तक छू जाता है। एक बात निश्चित है की जो समझने योग्य है उसे पाने की तमन्ना से समझने का प्रयास किया जाय तो सब कुछ उसके सत्य स्वरूप में हम तक पहुंच ही जाती है। इस महान आत्माने जीवन, समाज और धर्मके विषयमें जो समझाया है उसका मनन उसमें पूर्णत: तल्लीन हो कर किया जाय तो सब बातें सुंदर ढंगसे समझ में आ जाती है।

समस्त विश्वमें जीतने भी जीव हैं उन सबमें चैतन्य का अंश निहित है। अगर यह एक छोटा-सा अंश ही है, तो उसके पूर्णांश का संग्रह तो निश्चित रुपसे अदभूत होगा। ऐसे कितने ही चैतन्य अंश इस जगत पर फैले हैं। और इस विश्वके अतिरिक्त अन्य भी कीतने ही विश्व अंतरिक्षमें हैं। यह बात का स्वीकार तो विज्ञान भी करता है। सो यह जगत पूर्णांश नहीं है। जगत और उसकी अनन्य परिसीमाओंका मंडल अनन्य प्रकटीकरणका सूचन है अत: ऐसे तत्वोंकी उत्पत्तिका अलौकिक स्थान वही ब्रह्म है।

जिस ब्रह्मतत्वमें समस्त विश्व अपनी उत्पति से ले कर लय तककी गति प्राप्त करता है उसे तत्वज्ञोंने भगवान, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि विभिन्न नामेंसे परिचय करवाया है।

सर्वत्र व्याप्त अनेक लघु तत्व और उनके मूलमें रहे हुए महान तत्वों में कुछ अंतर छिपा हुआ जरूर है। और वह यह दिखाता है की जो मूल तत्व हैं वे बहुत ग़हन हैं। उनके नाम में भी कुछ वैविध्य होना अनिवार्य हो जाता है। और इस बातकी प्रतीती यूं होती है कि जो ब्रह्मतत्व है उसे ही परब्रह्मके नाम से जाना जाता है।

परब्रह्म स्वरूप विविधरूप पर अटल रहता है। सुवर्णकी लगडी घरमें हो वहां तक वह सुवर्ण ही कहा जायगा। लेकिन उसे तोड़ की कीसी अन्य स्वरूप में ढाला जाय तो उसे दूसरा नाम भी दिया जाता है। जब उस सुवर्णसे गले में ड़ालनेकी माला बनती है, तब उसे 'माला' कहा जाता है। लेकिन तब भी उससे सुवर्ण ईगित तो होता ही है। मिट्टीके बर्तन भी बर्तन बनने के बाद मिट्टी नहीं कही जाते। इन सामान्य साधनों को भी ठीक से परखे बिना उनके मूल तत्वोंका परिचय प्राप्त नहीं होता। तो फिर इतना विशाल विश्व और उसकी रचना का रहस्य समझने के लिये उसके मूलभूत तत्वोंको पहचाना न जाय तो कुछ भी समझ में आ नहीं सकता। जीव और जग़त दोनों का सम्बन्ध सीधा परब्रह्म के साथ है। इसे सांसारिक व्यवहारों से भी समझा जा सकता है।

दुनियावी चीजों का एक दूसरे के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध है। उनकी रचना और रचना के मूल तत्वों के बीच भी घनिष्ठ सम्बन्ध होगा ही। परब्रह्म और विश्वका सम्बन्ध भी इसी प्रकार का है। यूं तो परब्रह्म जीव मात्र की दृष्टि सीमा से परे रहा हुआ तत्व है। किंतु, यह अदृष्ट तत्व और जो तत्व दृष्ट है उन दोनों के बीच भी बहुत ग़हरा सम्बन्ध है। यह ग़हरापन समझाना थोड़ा कठिन है। जो अलौकिक तत्व हैं, उन्हें पहचाननेमें विशेष परिश्रम की आवश्यकता है। ब्रह्मको समझने के बहुत प्रयास हुए है। होते रहे हैं। ओर रहेंगे। कुछ प्रयासों के अन्तमें 'नेति नेति' के उच्चारण के साथ असफलता का अहसास भी होता है।

तब फिर ब्रह्म को पहचाना जाय कैसे ? और क्या सबूत की ब्रह्म की पहचान तक पहुंच पाये हैं ?

ब्रह्म को पहचानने से पहले ब्रह्म के गहन स्वरूप को पूर्णत: जानना समझना आवश्यक है। किसी भी व्यक्ति से पहेली बार मुलाकार होनी हो तो उसकी प्राथमिक तैयारी स्वरूप हम उससे परिचित कोई भाई या बहन से पूरी जानकारी पा लेते हैं। वैसी ही एक महान विभूति थे श्रीमद बल्लभाचार्यजी। बाल्यवय से ही वेदादि ग्रन्थों का चिंतन, मनन, अध्ययन द्वारा उन्होंने गहन सारांश समझ लिया था। इस असंग्धि जानकारी से सब सवालो के हल प्राप्त होते हैं।

ब्रह्म सर्व सम्पन्न है। दोष मुक्त है। वह पूर्णत: स्वतंत्र भी है। उसमें न स्थूल व न सूक्ष्म का कोई भेद है। जगत ब्रह्म की इच्छा के अधिन है। सब कार्य उसीकी प्रसन्नताके लिये ही किये जाते हैं। और आखिर में समर्पित भी उसे ही होते हैं।

इन सब बातों को पहचानने के लिये सब से श्रेष्ठ साधन है ईश्वरकृपा, वह कृपा भी दुखियों के सहायक होने से ही मिलती है। दीनता के अंश मनुष्यमें जितने ज्यादा विकसित होते हैं उतना ही वह ईश्वर के और करीब आता है।

ब्रह्मतत्व से जो जगततत्वकी उत्पति होती है, जो स्थिति और जो लय है, वह तीनों ही त्रिकाल से जूड़े रहते है। ब्रह्मतत्व से सत्य स्वरूप प्रकाशित है। वो जगततत्व भी है। इस जगतमें विचरण करनेवाले जीव आज जगत में अनेक कार्य कर रहे हैं । इश अंशत्व को गीताजी के १५ वे अध्याय में स्वयं श्रीकृष्णने प्रतिपादित कीया है। सो जीवतत्व सत्य है और जगत भी सत्य है।

सूर्य की किरण, पुष्प की सौरभ एवं चन्दन और चन्दनकी शीतलता की तरह जीव भी हृदय प्रदेश जैसे एक स्थानमें रह कर भी व्यापक तरीके से अपना कार्य करता रहता है। जीव अगर परम ब्रह्म की उपासना-सेवा इत्यादि करता है तो वह अपनी फर्ज अदा करने से विशेष कुछ नहीं करता। सब जीव विनीत भाव से इष्ट तत्वकी भक्ति व सेवा करे उसीमें कर्तव्य परायणता है ।

जीव, जगत व ब्रह्म के बीच एकता है। तत्वविद इस बात को विशेष सरलता से समझ पाते हैं। और समझा भी पाते हैं। कहीं कितनी गहराई है वह तो उस गहराई तक पहुंचे बिना नहीं जाना जा सकता। परब्रह्म को पहेचानने वाले अपने किसी भी प्रकार के अहम को मिटा कर, उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिये सतत प्रयास करते रहे हैं। उस दुर्लभ अंश तक पहुंचना ही उन महान आत्माओकी प्रतिभा का प्रमाण है।

जब ऐसी विभूतियां अपने आसपास फैला अत्यधिक अंधकार देखती हैं, तब वे उस अंधेरे को नष्ट करने के लिये आवश्यक अंतर्प्रेरणा एवं अंतर्वर्ती शक्ति पा ही जाते हैं। अमर विभूति श्रीमद बल्लभाचार्यजी उनके लिये जीवनध्येय पहचाननेवाले और वहां तक पहुंचनेवाले मार्ग सरल बना देते हैं। भक्त उसी ओर मुड़ जाते हैं। सदा मुड़ते रहे है। यह सब आचार्यश्रीके मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही फलित होता है।

(१२) सेवा के मार्ग

जिन्हें पहचाननेकी चाहना होती है उनके स्वरूप की पहचान आगे ही पा लेनी चाहिये। उसके बाद भी उन तक पहुंचने के रास्ते परखने पड़ते हैं और फिर उन्हीं रास्तों पर चलना पड़ता है। सिर्फ तब ही सच्ची श्रद्धा से उस लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। उसके बिना सारे प्रयास अर्थहीन हैं। और उसका मतलब यह हुआ की पूरा जीवन बेकार गया। हर एक आत्मा के लिये आवश्यक है की वह अपने जीवन ध्येय को पूरा समझे। ऐसे जीवों को राह दिखाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान गीता में उन्होंने जो कहा है उस अनुसार प्रत्येक युगमें जन्म धारण करते हैं। और तब समस्त जग़तकी दृष्टि उनकी ओर मुड़ती है। विश्व उनके पाससे सुख-शांतिके संदेश ग्रहण करने की अभिलाषा रखता है। वैसे अवतारी विभूति प्रकट होकर कर्तव्य का स्मरण कराते हैं। और तब पथभ्रान्त आत्माओं के ब्रह्म के साथ सम्बन्ध पुन: संस्थापित होते है।

इतिहास कहता है की श्रीमद बल्लभाचार्य के प्रागटयका युग सामाजिक व धार्मिक गतिविधियों के लिये प्रतिकुल समय था। उस अवतारी पुरूषने मानव जीवन में प्रविष्ट

अनिष्टों को मिटाने के लिये वेदादिक मंथन द्वारा ध्येय सिद्धि के लिये कुछ मार्गदर्शन प्रस्तुत किये। उन दर्शनकी रूपरेखा समझ कर किया जाय उतनी हद तक जीवन सार्थक होता है। अपने पूर्वजोनें सत्य तत्वोंकी गहनता पहचान कर उन्होंने ब्रह्म, जगत व जीव का परम स्वरूप दुनिया को समझाया। अज्ञानी आत्माओंके लिये उस मार्गकी मार्गरेखा भी अंकित कर दिखायी।

अपनी जन्म क्यों और कैसे हुआ यह जान कर बैठे रहने से उस स्वरूप के दर्शन सार्थक नहीं होते। किंतु, उसके बाद अपनी क्षतिओंको दूर करके उस अलौकिक तत्वकी सेवा करने योग्य क्षमता प्राप्त करने के लिये है। और वह भी उसके लिये जो नीति-रीतियां निर्धारित की गयी हैं उनका अनुसरण करने से होता है। यह अनुसरण विशुद्ध हृदयकी उत्कंठा व कामना से प्रेरित रहता है। अपने आप में योग्यता कितनी होनी चाहिये यह शोच कर उसे प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। वह भी एक प्रकार से भक्ति ही है।

इस भक्ति के दो प्रकार हैं। कभी कभी जाने-अनजानेमें भी आदमी उस तत्व तक पहुंचने की उत्कंठा करता है। मगर उसके पीछे सिर्फ लौकिक सुख प्राप्त करने के लिये इस भक्ति तत्व एक साधन की तरह काममें लिये जाते हैं। ऐसी भक्ति स्वार्थ बुद्धिवाली कही जायगी। ऐसी सकाम भक्ति से वास्तव लक्ष्य के तत्व दूर रहते हैं।

आत्मा इश्वरसे अलग हुआ, कब हुआ, कैसे अलग हुआ, अब उन तत्वो से किस तरह एकात्म हो जाय, जब व्यक्तिमें यह ज्ञानांजलिकी फुहार होती है तभी से उसके हृदयमें एक प्रकारकी उत्कंठा जागती है। यह उत्कंठा इतनी तीव्र हो जाती है की फिर मानवी अपने आपको सदा अपूर्ण ही मानता रहता है। और तत्पश्चात अपने मूलको खोजना एवं उस तक पहुंचने के लिये प्रयत्नशील रहना यह भी भक्ति है-द्वितिय प्रकारकी

यह निस्वार्थ बुद्धिवाली भक्ति है। और इस निष्काम भक्ति द्वारा अपने मूल तत्वों को पहचान कर उनसे एकात्म हो की उत्कंठा व्याप्त रहती है।

ब्रह्म को प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा से एक लगन पैदा होती है। और फिर उसी से ही एक अनुपम दर्शनिक सूत्र प्राप्त हुआ। उस सूत्रकी सहाय से सारे कठिन पंथ सरल होने लगे। पुष्टि मार्गके संस्थापक श्रीमद वल्लभाचार्यजीने जन सामान्यको वह सूत्र विस्तार से समझाया और उसका प्रसार किया। यह सूत्र ही ब्रह्म सम्बन्धका असल मन्त्र रहा। उस मन्त्र के सतत सेवन से मानव अपने इस जनमका मंगल कल्याण पा सकता है। आचार्यश्रीने उनके पास आनेवाले भक्तिमार्ग के समर्पित पथिकों को यह मन्त्र दे कर उनके कल्याण का मार्ग दिखाया दिखा।

भक्ति एक गहन विषय है। उस विषयमें मानव जितना मंथन करता है उतनी उसकी गहनता कम होती है। यह संक्रांति काल है। जब अस्थिरता चारों ओर फैल चूकी है। ऐसे वक्तमें मानव मन को संयम में रख कर विघ्नोंको नियंत्रित करने के लिये जिस तत्व की सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है वह है, एकनिष्ठा। यह गुण हर व्यक्ति को अपने आपमें विकसित करना पड़ता है। अगर वह नहीं होता है तो फिर जीवन के अनेक महत्वपूर्ण कार्य उसके हाथों ग़ैरजिम्मेदाराना वर्तन के कारण विगाडता हैं। अपने इष्ट देव तक पहुंचने का प्रयास अनवरत किया न जाय तो उस तक पहुंचने का लक्ष्य प्राप्त होना भी असंभव हो जाता है। व्यवहार दृष्टि से भी इस तरह एकनिष्ठा का महत्व समझा जा सकता है। हम सबके आसपास दैनिक कार्योकी एक भीड़ ज़मी ही रहती है। मानव मन जब भी संयम व एकनिष्ठा की आदत ड़ालता है तब उसके सब बोज अपने आप हलके हो जाते हैं। इस तरह भी निष्ठा और जीवन के बीचका गहरा सम्ब्ध देखा जा सकता है। भक्तिके उद्गमका मूलस्रोत है, निष्ठा।

भक्ति रस में डूबा हुआ मानव अपने सभी अंग, सभी शक्तिओंको खूब अच्छी तरह से विकसित कर सकता है। आचार्यश्रीके चिन्तन व मनन के कारण आचार व विचारकी शुद्धताका प्रसार करनेवाले अनेक प्रकार के नियम जन्म लेते हैं। और वे मानवीके जीवनको अपने मौलिक तत्वों को पहचानने में बहुत सहायक होते हैं। मानव हृदयमें पैदा होनेवाली विकृत उर्मिओं को सदा नियंत्रण में रखने से वृक्रुतियां आखिरमें अद्रश्य हो जाती हैं। कीतनी बार अच्छे व बुरे तत्वों के घर्षण से ही नवीन उन्नत मनोदशा प्रकट होती है। ब्रह्मांड़ का अणु मात्र ब्रह्म सर्जित होने के कारण उस सर्जन तत्वको किसी भी प्रकारकी क्षति पहुंचाने की वृत्ति सचमें ही निंदनीय है। अपने आचरण से किसीको भी थोड़ीसी क्षति पहुंचती है तो वह दुराचार है। जबकी, अपने वर्तन से किसीको भी कोई लाभ पहुंचता है तो वह सदाचार है। इसी कारण से दुराचार वर्जित माना गया है और सदाचार आदरणीय सदाचार से सर्जक भी प्रसन्न होता है और उसका सर्जन कार्य विशेष प्रगति पाता है। उस प्रगतिमें ही मानव जीवन की महता व सफळताके तथ्य अंक्ति हैं।

अपने इष्ट की भक्ति में मानसिक पवित्रता के बोधपाठ पूर्णत: निहित हैं। मानव स्वयं अपने जीवन का प्रतिबिंब परखने के लिये, अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये विविध रूप में उस इष्ट स्वरूप की आराधना कर सकता है ऐसा उपदेश हमारे आद्यपुरुषने हमें दिया है। उस उपदेश के मुताबिक सेवा तीन हिस्सों मे विभक्त होती है।

जिसमें देहको संयमित रख कर प्रत्येक अवयव से शिश्तबद्ध कार्य लिया जाय और जो आराधना हो वह है शारीरिक सेवा। उसे साम्प्रदायिक परिभाषामें कहेंगे, तनुजा सेवा। अपने इष्ट की आराधना सबब मानव देह व उसके अवयव जो भी कार्य करें वह तनुजा सेवा के अंश हैं। उसी तरह मानव अपनी विविध प्रवृत्तियों से जो कुछ भी उपार्जन

करता है और उसका व्यय अगर इष्ट की सेवामें होता है तो वह हुई आर्थिक सेवा। उसे हम वित्तजा सेवा कहेंगे। इन दोनों प्रकार से सेवा के प्राथमिक चरण गठित होते हैं। वित्तजा सेवा में अलंकार, वस्त्रादि एवं इतर सब द्रव्यप्रयोग समाविष्ट हैं।

मानवी ज्यों ज्यों एकनिष्ठ होने का अभ्यस्त होता है, अपने इष्टकी उपासना ज्यादातर मानसिक तरीके से कर पाता है। उसे मानसी सेवा कहते हैं। उसके लिये वह अपने आचार, कर्तव्यनिष्ठा एवं बाह्य वातावरण को कमी स्पर्श करता नही। एक बार उस अवस्था तक पहुंचने के बाद उसे इष्ट सिद्धि के करीब पहुंचा हुआ कहा जा सकता है। सेवा के पवित्र तत्वों से ही पवित्रताके तंतु पैदा होते हैं। ज्योंज्यों उनका विकास होता जाता है, त्यों त्यों आसपास का वातावरण भी पवित्र बनता जाता है। अगर सेवाभावी मानवका सम्पर्क अपनी वृत्ति व प्रकृति से ज्यादा शक्तिशाली और अच्छे तत्वोंवाली व्यक्तिओं से होता है तो उसका अपना विकास भी ज्यादा विस्तृत स्तर पर होता है। **ऐसे सम्पर्क को ही सत्संग कहते है।** सत्संग से मानव की अपनी भावनाएं व उर्मिओं को ओर भी गति प्राप्त होती है। ज्यादा जल्दी आगे बढ़ सकता है। अपने आद्य पुरुषने सेवा के क्षेत्रमें सत्संग के महत्व को उजागर कर उसके लिये भी उपदेश दिया है।

सत्संग का अर्थ है साधु परूषो से समागम। और उनकें द्वारा जीवनमें उच्च गुणोंका विकास। जब किसी व्यक्ति से कुछ प्राप्त करने की इच्छा रहती है, तब उनकी प्रकृति के अनुकुल होने के लिये हमे अपनी कुछ वृत्तियों को नियंत्रित करनी पड़ती है। ओर वह नियंत्रण संयम द्वारा ही आ सकता है। विनम्रता इन गुणो की प्राप्ति में महत्वपूर्ण आती भूमिका अदा करती है। उसी से मानवी के आचार-विचार में सादगी आती है। ज्यों ज्यों सादगी बढ़ती है, त्यों त्यो नम्रता में भी वृद्धि होती है। और तब ही साधु पुरुषोंकी प्रकृति के

अनुरूप होना संभवित बन पाता है। इस उन्नत्ति का मार्ग भी श्रीमद बल्लभाचार्यजीने इंगित किया है।

इन पुष्टि मार्गीय सिद्धान्तों का सच्चा मर्म समझनेवाला व्यक्ति ही कह सकता है की उसके नीतिनियम विश्व बन्धुत्व की भावना से पूर्णत: ओतप्रोत है। विश्वधर्मकी भावना इस मार्ग में इतनी अच्छी तरह से विकसित हुई है की वह सर्वत्र व्यापक बन जाती है। और उसी से समानता उद्भव होती है। ऐक्य की भावना को भी वही जन्म देती है। यह भावना मानव सेवा द्वारा समस्त विश्व में सुख-शांतिका संदेश एवं मानव समाज में पहुचानेवाले उत्कर्ष के संगीन तत्वोंका प्रसार करती है। पुष्टि संप्रदाय का नवनीत रूपी सारांश भी इस सेवा के तत्व में ही निहित है।

जगत में दो प्रकारके तत्व हैं। इस विश्वमें मानवशक्तिको विकसित करने के लिये इश्वर और भी उसे प्रशिक्षित करता है और उसमें नये नये विकल्प डालता रहता है। साथ ही साथ, अनिष्ट तत्वों को वश होनेवाले व्यक्तिओं की अधोगति भी वह दिखाते है। इन दोनों तत्व, अच्छे व बुरे, की उलझन से नीकल कर अपने जीवन को उन्नत बनानेवाली राह खोज लेने में ही हर व्यक्ति की मानसिक कसौटी रहती है। इन तत्वों से संपूर्ण मुक्ति पाना अति आवश्यक है। वह मुक्ति पाने से जीवन के कंटक अपने आप दूर हो जाते हैं।

एक आखिरी बात। जिसने इस जगत का सर्जन किया, मानवी का सर्जन किया, उसने उसके लिये पोषक तत्व भी पैदा किये हैं। इस बात का स्वीकार करना होगा। अपने सर्जकके प्रति कायिक, वाचिक, मानसिक समर्पण करके ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। किसी चीज ग्रहण करने से पहले वह चीज अपने इष्ट को समर्पित करनी चाहिये।

(१३) सांप्रदायिक भावना

जब अग्नि परीक्षा होती है तब सुवर्ण शुद्ध प्रमाणित होता है , तब उस मंतव्य का अनुसरण करनेवाला वर्ग भी अपने आप उपस्थित हो जाता है। तब ही कुछ तेजोद्वेषी व घमंडी लोग उलझने खड़ी करते हैं। किंतु उनका विरोध क्षणभिंगुर होता है यह बात सिद्धांत प्रतिपादित करनेवाला अच्छी तरह जानता है। सो वह अपने सिद्धांत को उनसे सुरक्षित रखने के उपाय समय पर करते है।

हिंदु धर्म के सामने आ पड़ी थी एसी ही आपत्तियां। और उन्हें दूर करने के इरादे से अपने आद्य पुरुषने उपाय जो किये वे उन्होंने स्थापित किये हुए उन सिद्धांतो पर ही आधारित थे। उस कारण उन्हें बहुत सी सभा एंव मुकाबलो में सम्मिलित होना पड़ा। आखिरकार वे ही विजयी होते थे और सन्मानित भी। किंतु उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य का प्रचार भारतभरमें करने के लिये उन दिनों सिर्फ प्रवास एक ही रास्ता था। प्रवास ! ओर उन्होंने बहुत प्रवास किये।

आपश्रीने तीन महायात्राएं अथवा परिक्रमायें की। जहां जहां वे गये वहां वहां उन्होंने लोगोंके दिल बड़े ही सुंदर ढंग से जीत लीये। उसके प्रमाण रूप उनकी बैठकें आज भी अस्तित्वमें है। उन बैठकोंके बारे में आगे विस्तारपूर्वक देखेंगे। उससे पहले उनके मत के बारे में कुछ बातें समझ लें।

अपने सम्प्रदाय के सिद्धांतो की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करें। आपश्री के मतानुसार जीव, जगत और ब्रह्म के आनुषांगिक सम्बन्धों के विषय में हम आगे विचार किये हैं। सम्प्रदाय में सेवा के विविध मार्गों के बारे में भी तुलनात्मक विचार किये हैं। उन सब से अब तक सिर्फ एक ही निष्कर्ष मुख्य रूप से फलित होता है। और वह यह की एक ही ईश्वर का आधिपत्य है। इश्वरका (ब्रह्मका) आदिपत्य व सत्यता व विश्वमें विभिन्न रुप स्थिति आदि, आचरणकी बुद्धि गम्यता एवं सरळता।

इस विश्वमें भिन्न भिन्न मति देखने मिलती है। एक बात पर लोग अनेक तरीके से शोचते हैं। इसी कारण से भिन्न भिन्न मार्ग पैदा होते हैं। इन सब मार्गों का आरंभ व अंत दोनों ही समान होते हुए भी विचारों की भिन्नताके कारण विभिन्न मत स्थापित होते हैं। आचार्यश्रीके मतानुसार जीव और जगत दोनों ही ईश्वर के अंग व उपांग हैं। और यही मत अपने पूर्वजोंका भी था। भक्त हृदयको उसीमें पूर्ण शुद्धि व संस्कारिता दिखाइ देती है। और विश्वभरमें जो शुद्ध तत्व है वही ईश्वर है।

जगत के प्रत्येक अणुमें ईश्वर व्याप्त है और इस बारे में किसीका कोइ विरोध नहीं हैं। यह समस्त जगत ईश्वरका ही है। और ईश्वर इस जगत से जुड़ा हुआ है। इस भावना की विशुद्धता स्थापित करनेके लिये आचार्यश्रीने ब्रह्म तत्वकी शुद्धता समज़ाने का विशेष प्रयास किया है जो समाजके लिये उपकारक है।

ब्रह्म का अर्थ ही है ईश्वर। ब्रह्म मतलब जीव एवं जगतका उत्पत्ति स्थान। ब्रह्म एक ही है। उसके स्वरूप में कोइ भिन्नता नहीं है। ईश्वर जो समस्त विश्व का मालिक है वह एक है। दो नहीं। दो मतलब द्वैत, जो दो नहीं है वह अद्वैत। मतलब की ईश्वर या ब्रह्म दो नहीं, लेकिन अद्वैत है। जगत के प्रत्येक अणुमें वह व्याप्त है। यही बात उसकी विशेषता प्रमाणित करती है। ईश्वर पर अन्वेषण के फलस्वरूप एक ही तथ्य प्राप्त होता है। कि वह विशुद्ध अद्वैत है। शुद्धाद्वैत। और वही अपनी सांप्रदायिक भावना है।

विश्व में चलनेवाली विविध प्रवृत्तियां एवं प्रगति-अधोगतिके उतार-चढ़ाव देख कर कुछ लोग उसे माया का खेल मानते हैं। किंतु, ऐसी व्याख्या हमारे आद्य पुरुष को स्वीकार्य नहीं है। उनके मत से जगत तो कार्य है और ब्रह्म कर्ता है। कर्ता के कार्य का वैविध्य इस प्रकार का भ्रम पैदा करता है, किंतु, वह भ्रम ही है। अपनी सांप्रदायिक सेवाओंका निर्माण तो शुद्धाद्वैत भावना पर ही स्थापित है।

माया मतलब आभास। उसमें सत्य नहीं होता। जगत ईश्वरमय है और उसमें आभास देखना व होने का खयाल करना बेहूद गंभीर बात है। यह सत्य हमारे आद्य पुरुषने खोज निकाला। और जगतके सामने प्रस्तुत किया। आज भी भारतके करीब दो कोटि से ज्यादा लोग इस सत्य पर आधारित मार्ग को अपनाते हैं। और उसीसे विस्तृत विश्वव्यापी बन्धुत्व भाव प्रसारित होता है। उस भावनामें निहित सेवा व समर्पण के सिद्धांतो को समज़नेवाला हर कोइ अपने जीवन को उन्नत बना सकता है।

हमारे संप्रदाय की विशिष्ट परिभाषा अनुसार यह जगत कार्य-स्वरूपसे ईश्वर-शुद्धाद्वैतका अंग है। जगत में जो भी उत्पन्न होता है वह ईश्वर का ही रुप है। जगतके

चेतन व अचेतन सभी अंग ईश्वरीय आधिपत्य के अधीन है। और यह आधिपत्य अविभाज्य ही रहते है। आधिपत्य मौलिक होने के कारण उसका स्वीकार करके ही कार्य हो सकता है।

अपने संप्रदायमें एक बात सिद्धांत रूप में अंकित है। जीवन में ,जिसकी आवश्यकता है वैसी किसी भी चीज़का उपयोग प्रयोग करने से पहले वह उसके असल मालिक को समर्पित करनेकी भावना निर्धारित है। अत: कोई भी असमर्पित चीज़का उपयोग संप्रदाय के अनुयायीओं के लिये वर्जित गीनी गइ है। इस तरह जीवन प्रभुमय बनने से जीवन की उन्नतिका मार्ग विशेष सरल बनता है।

भावना ही मानसिक प्रशिक्षण की और प्रथम कदम है। संप्रदाय इस भावना के विकास का केन्द्र है। प्रशिक्षण की नींव को सुदृढ बनानेका भी वह केन्द्र स्थान है। हमारी संस्कृति मानव जीवनको उच्च स्तर पर ले जानेवाली संस्कृति है। इस तरह भावना हमारी संस्कृतिके सहयोग से मनोबलको सशवत बनाने के वाहन के रूप में कार्यरत होती है। और इस तरह भावना क्रमश: उच्चतर होती रहती है। भावना के सर्वोच्च स्तरके प्रति हम स्वाभाविक रूप से ही आकर्षित होते हैं। जिसके आधिपत्यका हमने सर्वथा स्वीकार किया है वही सर्वनियंता है यह बात सिद्ध हो जाती है। उस सर्वनियन्ताके प्रति लक्ष्य केन्द्रित करके उन्हीं का आश्रय लेना चाहिये। आश्रय भी एकनिष्ठ ही रखना चाहिये। यही सर्वोत्तम भावना है। वही दाता है योगक्षेमका। वही क्रर्ताहर्ता है। जितनी गहरी आसक्ति उसमें रहेगी उतना ही अपना जीवन भी उच्च होगा।

अब सिर्फ एक ही प्रश्न हमारे सामने उठता है। भावना का प्राबल्य जितना बढेगा उतना ही मनोबलका ज्यादा विकास होगा। और उतना ही हमारे आत्माका विद्युत बल हमे

अपनी इच्छित सिद्धिके करीब ले जायगा। इस नियमानुसार आत्मबलकी सम्पत्ति पर हम अपनी भावना का प्रवाह बढ़ायें तो हमारा श्रेय व ध्येय दोनों ही सिद्ध होंगे। इस कारणवश सर्वनियन्ता के आश्रय प्रति अनन्य आसक्ति का सेवन करना चाहिये। उसीका नाम है अनन्याश्रय।

यह भी हकीकत है की कभी कभी हमें कोइ विरोधी तत्व का सामना करना पड़ता है। जिस अनन्य आश्रय के प्रति हम आसक्त होते हैं उसमें किसी भी प्रकारका विघ्न खड़ा न हो उस हेतु को सदा नज़र के सामने रखना होगा। जब मनोबल विभाजित होता है तब विक्षुब्धता पैदा करनेवाली स्थिति खड़ी होती है। वह हमारी मानसिक सुदृढताको खंडित करती हैं।

किसी भी स्थिति में हमारे अनन्याश्रय में क्षति नहीं पहुंचनी चाहिये। सब से महत्वपूर्ण बात यह है की हमारे लक्ष्य को सदा अविभक्त रखना होगा। जिससेकी प्रभुमें आसक्ति अखंड़ित रहे। एक ही रास्ता है उसके लिये। अन्य आश्रय का त्याग। यह भावना जितनी प्रबल होगी उतना आत्मबल सुगठित रहेगा।

इस भावना के सफल अनुयायी थे गोपीजन। उनकी सेवा व भावना आदर्श कही जाती है। गोपीजन, प्रभु के विशिष्ट धर्माश्रय स्वरूप के दर्शन कर पाये थे। गौपीओने उस भावना को सर्वश्रेष्ठ रुप में प्रतिबिंबित किया है। वही परमात्मा विराट स्वरूप होते हुए भी माता यशोदाजी से भयभीत होने का दृश्य हमे देखने मिलता है। प्रभु सर्व धर्मों के दर्शक होते हुएभी कितने सरल भाव से गोपीकाओं के साथ हिलमिल जाते हैं। वही प्रभु हमारे पुष्टि मार्ग के जगन्नियन्ता हैं। उन्हें कोटि प्रणाम।

(१४) सरल सिद्धांत

भावना युक्त मार्ग में इस मार्गमें एक और विशिष्टता दिखाइ देती है। जिस सिद्धांतका श्री महाप्रभुजीने प्रचार किया और जिसे उस युगकी जनताने अपनाया वह शुद्धाद्वैत के सिद्धांत पर आज तक चलनेवाला वैष्णव समाज, वही है पुष्टि मार्ग।

उनके इस सिद्धांत को समज़ाने के लिये तथा उसमें रही हुइ जन कल्याण की भावना को उज़ाग़र करने के लिये हमारे आद्य पुरुषने जो भी प्रस्तुत किया वह अति सरल भाषामें एवं सूत्रात्मक रूपमें है । यह शैलि जनमन पर बहुत ही गहरी असर छोड जाती है।

'जगत सत्य है' - यह एक सब से अग्रिम सूत्र है। उसी तरह एक अन्य सूत्र है: 'सदा चित्त श्रीकृष्ण चन्द्रकी सेवा में ही लगा रहे'।

'श्रीकृष्णः शरणं मम'। श्रीकृष्ण ही मेरे आधार हैं। यह सूत्र सौभाग्य दायक, सम्पत्तिदायक, पाप नाशक, जन्म-मृत्यु के दु:ख निवारक, ज्ञान दायक, भक्ति प्रेरक इत्यादि अनेक गुणोंवाला माना जाता है। यह सूत्र ही हमारे मार्ग का हार्द है।

बल्लभ संप्रदाय के आचार्यश्री आज भी पुष्टि सृष्टि के अनुयायीओं को यही नाममंत्र दीक्षा देते हैं। यह प्रथा लम्बी अवधि से अखंडित चली आ रही है। वह ही अपने आप में एक बड़ी गरीमा है। इस सूत्रकी शक्ति के बारे में आइए एक दृष्टांत देखें।

अपने संप्रदाय के आदि सेवकों में से एक थे, कृष्णदास मेघन। उन्होंने अपना बहुत समय हमारे आद्य पुरुष के सानिध्य में ही बीताते थे। ८४ वैष्णवकी कहानियां नामकः पुस्तक में हम उनकी भक्ति भावना के विषय में पढ़ सकते हैं। एक बार वे श्रीमदाचार्यश्री के साथ यात्रा पर निकले। जब वे ज़ंगल से गुज़र रहे थे तब आचार्यश्रीने उन्हें यह मन्त्र का ज़ाप करने की आज्ञा दी।

मेघनजीने ज़प करना शुरु कीया। इस मंत्र की शक्तिकी प्रतीति उन्हें प्रवास में ही हुइ। एक बार वे एक जलाशय के तट पर कुछ पत्ते लेने गये। तब भी उनका जप तो चालु था। उस जलाशयके किनारे नज़दीक में ही एक बाघ खड़ा था। लम्बे अरसे से वह तृषातुर था। अपने पूर्व ज़न्म में वह बाघ कोइ पुण्यात्मा रहा होगा। बाघने मेघनजी के मुख से ईश्वर का नाम सुना। तत्काल उसने जलपान किया। दुबारा सुना तो दुबारा जलपान किया। पशु श्रेणी में भी यह मंत्र कितना प्रेरक प्रमाणित होता हैं उसका यह उदाहरण है। इस मंत्र को अष्टाक्षर मंत्र कहते हैं। और अब दूसरा सूत्र देखे : 'श्रीकृष्णकी सेवा यही प्रत्येक आंशिक जीवका धर्म है।' मतलब क्या उसका ? प्रत्येक जीवको श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिये, किसी अन्य की नहीं। वही स्वधर्म है। और स्वधर्म का त्याग करनेवाला विधर्मी कहा जाता है।

अगर कोइ स्वधर्मका सच्चा तत्व समज़ न पाया हो तो उसे क्या करना चाहिये? बिना समजे ही छोड़ देना चाहिए? या उसे समज़ने का विशेष प्रयास करना चाहिये? अगर समज़नेकी चेष्टा करें तो उसमें दिलचस्पी अपने आप पैदा होगी।

उपर दिया हुआ सूत्र आचार में लाने से हमें हमारी सिद्धि प्राप्त करने में गति मिलती है। जगत में पैदा होने के बाद जीना भी प्रभुके लिये और वापिस जाना भी उसीकी शरणमें।

एक प्रश्न और अब उठता है। अगर हम सब एक ईश्वरकी पैदाइश हैं, एक शुद्ध ब्रह्म के अंश हैं, तो फिर ईश्वर क्यों सब को एक समान हालातमें नहीं रखता ? यह जगत ब्रह्म का सर्जन है। इसे ईश्वरने अपने आनंद के लिये सर्जित किया है। और इस कारण से वैविध्य होना जरूरी है। वैविध्य न हो तो आनंद प्राप्त नहीं होता। और इसी लिये जगतमें विविधताका आविष्कार हुआ। किंतु, इस कारण से अपना स्वधर्म पाने का मानव जीवका ध्येय विभिन्न नहीं हो जाता। ब्रह्म तक पहुंचने का धर्म तो उतना ही व्यापक रहता है। जीव ब्रह्मका अंश है। सो उसे सर्व में व्याप्त ब्रह्म की तलाश कर उस तक पहुंचना शेष रहता है।

यह बात प्रत्येक जीव के अंतरात्मा में पूरी तरह से उतरनी चाहिये की वह एक महातत्व से जुड़ा हुआ लघु अंश है और उसे अपने मूल तत्व तक पहुंचना है। जब यह महानतत्व समज में आयेगा तब अपने धर्म का सच्चा स्वरूप भी उसकी समजमें आ जायेगा। उपर दिया हुआ सूत्र इस कारण से उसे सदा अपने ध्यानमें रखना होगा।

सरलता सबको प्रिय है ही। सरलता के साथ अगर सिद्धि प्राप्त होती है तो ऐसे सूत्र विशेष रूप से आवकार्य हो जाते हैं। सर्वग्राह्य हो इस हेतु से हमारे आद्य पुरुषने सब सिद्धान्त सूत्र स्वरुपमें हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं।

सरलताके साथ साथ सूत्र में गहनता भी होती है। उनके उच्चारणमें भी बल होता है। हमारे संप्रदाय को उन्होंने अनेक सूत्रों से समृद्ध बनाया है। और सिद्धिकी राह सुलभ हो शके वैसी दिशारेखा अंकित की है। गृस्थाश्रम में रह कर भी भक्ति मार्ग अपना कर हमारे लक्ष्यकी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। उसके लिये साधु व सन्यासी होने की आवश्यकता नहीं है। वह बात उन्होंने सरल ढ़ंग से समज़ाई है। और अनेक दृष्टान्तों द्वारा प्रमाणित कर दिखाइ है। वही हैं पुष्टि मार्ग।

छोटा-सा शब्द है यह ‘पुष्टि’। लेकिन कितने गहन गुण हैं उसमें। उसका दूसरा नाम है, ‘शुद्धाद्वैत-भक्तिमार्ग’। भावनासभर भक्तिसे इस मार्ग पर चलनेवाले कितने ही भक्तों का कल्याण हुआ है।

हमारे आद्य पुरुष द्वारा प्रतिपादित किये गये सिद्धान्त पर चलनेवालेने कैसी उच्च सिद्धि प्राप्त की हैं यह बात संप्रदाये के दो पुस्तक, ‘चौरासी वैष्णवकी कथा’ एवं ‘दो सो बावन की कहानी’ से प्रतीत होती है। पुरानेकाल में सिद्धान्तों का प्रचार करना सरल नहीं था। इसी कारण महाप्रभुजीको महायात्राएं एवं भारत परिक्रमायें करनी पड़ी। जहां आपश्री यात्रामें बिराजते (निवास करते) थे उन पवित्रतम स्थानोंकों पुष्टि सम्प्रदायके इतिहासमें “बैठकजी” के नामसे सुविदित है जिसकी चर्चा आगे सावकाश करेंगें।

(१५) जगत और संसार का भेद

जगत ब्रह्म द्वारा अपने क्रिड़ार्थ किया गया सर्जन है। उसमें निवास करनेवाले जीव अपनी अपनी प्रवृत्तिओं से घिरे रहते हैं। और ब्रह्मका अपना आनंद भी विकसित होता रहता है। ईश्वरकी गतिको अधीन रह कर जो भी कार्य सिद्ध हो वही है सफलता। इस जगतमें पैदा होने के बाद मानवमें तरह तरह की अपने व परायेकी भावनाएं उत्पन्न होती है। और उन भावनाओं से ही अहंता एवं ममता उत्पन्न होती हैं।

उसी से मालिकी की भावना पैदा होती है। हालांकी, यह मालिकी भाव मानव की कल्पना मात्र है। जब सब कुछ ईश्वरके आधिपत्यमें हैं, तब जीवात्मा की यह मालिकी आयी कहांसे। मानव के अज्ञान से। मानव यह नहीं शोचता है की वह स्वयं ईश्वर की इच्छा के अधीन है। फिर उसका अपना क्या ? जगत ईश्वरने पैदा किया है। किंतु, मानवकी भ्रामक कल्पनाने जो अपना समज़ा है वह एक अन्य वस्तु है। और, उसके उस कल्पित स्वरूप को नाम दिया गया है, 'संसार'।

कहते हैं संसार असार है। स्पष्ट है की जगत और संसार दो भिन्न अस्तित्व है। जगत ईश्वर सर्जित है। संसार जीव कल्पित है। कल्पना सिर्फ आभास होती है। यह बात श्रीमदाचार्यने अपने ग्रंथ 'नवरत्न'में सुंदर तरीके से व्यक्त की है।

गोविंद दुबे नामक एक भगवद भक्तने एक बार श्री महाप्रभुजीको विनतिकी कि 'गुरुदेव! चिंताग्रस्त होने के कारण भक्ति में पूरा मन नहीं लगा पाता। क्या इलाज है इसका। यह चिंता क्यों पैदा होती होगी।' श्री महाप्रभुजीने उनकी चिंता का निवारण के लिये उन्हें 'नवरत्न' ग्रन्थ द्वारा उपदेश दिया। यह भी समजाया की संसार मिथ्या है।

जिस भेदको जीवने ही पैदा किया है। वह मेरा-तेरा का भेद भूल कर ईश्वर द्वारा रचित जगत ईश्वर के आधिपत्य नीचे है यह शोच कर अपना स्वधर्म करे। यह उपदेश आचार्यश्रीने दिया। गोविंद दुबे श्री आचार्यजीके एक प्रिय शिष्य थे। उन्होंने महाप्रभुजीका उपदेश अच्छी तरह ग्रहण किया।

मानों की एक राजा हो। वह अपनी जमीन में एक सुंदर हवेली बंधवाते हैं। वह हवेली वे किसीको रहने के लिये देते हैं। फिर उनकी इच्छा होती है की जहां हवेली है वहीं एक उद्यान बनायें। और वह हवेली गीरा देते हैं। अब उसमें रहनेवाला इसका विरोध कैसे करे ? उसी तरह ईश्वर ही जगत का रचयिता है। जगत की उत्पत्ति व उसकी स्थिति ईश्वरकी इच्छा के आधीन है।

राजाकी उस हवेलीमें रहनेवाला अगर अपने सुख खातिर हवेली में कुछ नयी रचना करे तो वह करने का अधिकार उसे कैसे मिल सकता है। वह तो एक किरायेदार है। हवेली बनानेवाला स्वयं अपनी रचना तोड़ कर नया सर्जन करे तो किरायेदार उसका विरोध भी कैसे कर सकता है ?

अच्छी बात तो यह होगी की किरायेदार को उस विषय में चिंता करनी ही नहीं चाहिये। यह जगत उसका नहीं है। जीव भी अन्य का है। तो फिर इस जगत की विकृतियों के बारे में शोचने का कया मतलब ? जगत के लिये जब मोह पैदा होता है तभी चिंता भी पैदा होती है। उस मोह का ही त्याग किया जाय तो फिर चिंता रहेगी कहां।

जगत और संसार के भेद समजानेवाले श्री महाप्रभुजी श्रीमद बल्लभाचार्यजी ही है। अन्य पंथ-मार्ग प्रणेताओंने यह बात समजाई नहीं है। यह भेद उजागर करनेवाला ''पुष्टिमार्ग'' ही है।

प्रश्न उठ सकता है कि जब संसार मिथ्या है, मेरा-तेरा मिथ्या है, तो फिर गृहस्थाश्रम रोकने का कोइ प्रयास श्रीमदाचार्यजीने क्यों किया नहीं है। उलटे, उन्होंने गृहस्थाश्रम के विकासकी भावना समजायी है। जगत में आने के बाद जीव गृहस्थाश्रम के चक्कर में फंसता है। यहां वह अपनी मालिकी स्थापित करनेकी कोशिश करता हैं। सच तो यह है की गृहस्थाश्रमकी प्रवृत्ति भी जीतनी आवश्यक हो उतनी ही करनी चाहिये।

इस प्रवृत्ति में धन प्राप्ति, संतान प्राप्ति इत्यादि है। और यह सब इश्वरीय देन थी। यह बात हमारे आद्य पुरुषने समजाई है।

(१६) प्रचार-प्रवास

शास्त्रार्थोमें प्रसिद्ध विद्वानोको पराजित करनेसे ''शुद्धाद्वैत'' सिद्धांत मतके साथ महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीकी कीर्ति दश दिशाओमें व्याप्त हुई थी अब आपश्री बहुजन हिताय यात्रा करना चाहते थे।

श्री लक्ष्मण भट्टजीकी इच्छा भी अब यात्रा की ओर मुडी थी। उनका अंत समय अब नज़दीक आ पहुंचा है यह खयालसे प्रेरित वे यात्रारंभ करना चाहते थे। दूसरी ओर ज्ञानवृद्धि के हेतुसे श्रीमद बल्लभाचार्य भी प्रवास के लिये उत्सुक थे। तब उनकी प्राय : किशोर अवस्था थी।

यात्रा करते हुए श्री लक्ष्मण भट्टजी लक्ष्मण बालाजी पहुंचे। और वहीं उनका लीला प्रवेश हुआ। अंतिम क्रिया इत्यादि समाप्त करके श्रीमदाचार्यजी जगन्नाथ पुरी जा पहुंचे। तब पुरी में मायावादीओं का बहुत जोर था। वहां के राजा के सानिध्यमें मायावादीओं के साथ वैष्णव पंडितो का शास्त्रार्थ चालु था। श्री महाप्रभुजी वहां जा पहुंचे।

श्री जगदीश मंदिर में आयोजित उस सभा में वैदिक सिद्धांतो पर चर्चा चल रही थी। श्रीबल्लभाचार्यजी उस चर्चामें शामिल हुए। वैष्णवों की ओर से श्रीबल्लभाचार्यजीका

विजय हुआ। अंत में, उत्कल देश के गजपति पुरुषोत्तम राजाने पंडितो से चार प्रश्न पूछे: १. सबसे प्रधान प्रमाणिक ग्रन्थ कोन सा ? २. प्रधान प्रमाणिक देव कोन ? ३. कोन सा मन्त्र फलदायी है ? ४. सब से सरल एवं उत्तम कर्तव्य क्या ? इन प्रश्नो पर भी दोनो पक्षों के बीच खूब वादविवाद हुआ।

अंत में, श्रीमदाचार्यने भक्ति मार्ग के आधार पर प्रश्नों के जवाब का अस्वीकार किया। लेकिन मायावादीओं का हठाग्रह था और उन्होंने कहा की अगर स्वयं जगदीश जी उस सिद्धान्त का स्वीकार कर लेते हैं तो वह सच माना जायगा। जग़दीश मंदिर में एक कोरा कागज, लेखिनी और श्याही रख दी गयी। कुछ समय बाद जब दरवाजा खोला गया तब कागज पर यह श्लोक लिखा हुआ पाया गया (१) एकं शास्त्र देवकी पुत्र गीतं-एक शास्त्र भगवद गीता (२) एको देवो देवकी पुत्र एव-एक देव श्रीकृष्णचन्द्र (३) एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि-एक मंत्र श्रीकृष्ण शरणं मम (४) कर्माप्येकंतस्य देवस्य सेवा-श्री ठाकोरजी की सेवा ही कर्म है।

यह पढ कर मयावादी निरुत्तर हुअे। पर फिर भी किसीने आशंका की कि इसको दुबारा कुछ ज्यादा सतर्कता के साथ काग़ज, कलम और स्याही रखे गये। द्वार बन्ध कीये समयानुसार द्वार खोलने पर कोरे कागजपे श्लोकथा :

य: पुमान पितरं द्वेष्टि तं विद्याद् अन्य रेतसम्।
य: पुमान् श्री हरिंद्वेष्टि तं विद्याद् अन्त्य रेतसम।

अर्थात अन्यरेतस पिताक एवं अन्य अन्त्यरेतश (चारित्र्यहीन) भगवानका द्वेष करता है।

..... लिख कर इस तरह का श्लोक आया। राजा बहुत ही क्रोधायमान हुआ। उसने मायावादीओं को अपमानित किया। और श्रीमदाचार्यको विजयमाला पहनाइ। बहुत भक्तिभावसे उनका पूजन भी किया। इस तरह श्रीमदाचार्यकी प्रतिभा में एक और कीर्तिपुण ज़ुड गया।

आचार्यश्री शास्त्राज्ञा, व्रतपालन इत्यादि के भी आग्रही थे। श्री जगन्नाथजीके एक बार एकादशीके रोज़ वे जगदीश दर्शन करने पधारे। वे नियमित एकादशी करते थे। वे श्री जगदीश दर्शन करते थे एवं स्तुति भी। तभी किसीने उनकी कसौटी करनेके इरादे से आचार्यजीके हाथमें महाप्रसाद रख दिया। उसे विश्वास था की आचार्यश्री या तो उपवास भंग करेंगे अथवा प्रसाद की अवहेलना। श्रीमदाचार्य उसका आशय परख गये। जगदीश स्तुति पूर्ण होते ही उन्होंने महाप्रसादकी स्तुति प्रारंभ की। और इस प्रकार एकादशी सम्पन्न हुई। वह स्तुति बारश तक चली। मंदिर के द्वार खूले। उन्होंने दर्शन किये। और उसके बाद ही महाप्रसाद लिया। यह देख कर कसौटी करनेवाले आश्चर्यचकित हुआ व अपने आचरण पर पश्चाताप करने लगे।

उन दिनों वे ब्रह्मचर्याश्रमी थे। और वैसे ही उन्होंने यात्रा आगे बढ़ाइ। यात्राकी समाप्ति पर अपनी माताजी को उन्होंने अपने नाना के घर भेज दिये। और श्री महाप्रभुजी अवन्ती नगरमें पधारे व तीर्थस्नान किया।

दक्षिण की यात्रा करते हुए वे भूतिग्राम पहुंचे। यह श्री विष्णुस्वामी तथा श्री संप्रदायके रामानुजाचार्य की जन्मभूमि है। वहां से शिवकांची गये। एकांबरेश्वर महादेव के दर्शन किये। फिर वेगवती नदी को पार कर विष्णुकांची पंहुचे। वहा उनकी इच्छा वरदराजजीके दर्शनार्थ जानेकी थी। गीत गोविंदके कवि जयदेवकी अष्टपदी मंदिर की सीड़ियों पर अंकित की गयी थी उस पर पैर रख कर चलना अनुचित था। दर्शन भी करने थे। एक प्रकारका धर्मसंकट खड़ा हो गया। तब उन्होंने श्रीकृष्ण प्रभुका ध्यान किया और मार्गदर्शन चाहा। उत्तर मिला: यात्रिकों की चरणरज़ पवित्र मानी गयी है। सो आप आनन्दसे जाइये। अंत में प्रभुने गीत गोविंद की पंक्तियां भी वहां से हटा कर दीवालोमें लगा दी गयी।

वापिस लौटते वक्त आचार्यश्री ताम्रपर्णी नदी के तट पर विश्राम कर रहे थे। तब कोटा के राज पुरोहितने उनके पास आ कर अपनी समस्या बयान की। ''हमारे राजा कालज्वर से पीड़ित हैं। उससे मुक्ति पाने के लिये उन्होंने कालपुरुष की सुवर्ण प्रतिमा

दानार्थ बनवायी है। लेकिन जब भी कोइ ब्राह्मण उस दान का स्वीकार करने जाता है तो कालापुरुष उसे दो उंगली दिखाता है। तब ब्राह्मण ड्र कर पीछे हट जाता है। अब राजपुरोहित होने के नाते वह जिम्मेदारी मेरे शिर आ पड़ी है। आप मुझे इस संकट से बचाइये। कुछ राह दिखाइए।''

आचार्यश्रीने अपने शिष्योंमें से एक विप्र शिष्य को साथ ले जाने कहा। गायत्रीका ध्यान कर के दान का स्वीकार करने से कोई मुश्किल नहीं रहेगी। राजपुरोहित वहशिष्यको लेकर पालकोटा गये और कालपुरुषने दो उंगल दिखाइ तो शिष्यने तीन उंगली दिखाकर शिर झुकाया और दानका स्वीकार किया। तब उसका हाथ श्याम वर्ण हो गया। पर उस प्रतिमा के टुकड़े करके ब्राह्मणो में बांटु दिये तो हाथ फिर से पूर्ववत हो गया। यह देख कर राजा चकित हुआ। और इस चमत्कार का खुलासा जानना चाहा। तब श्रीमदाचार्यके बारे में उन्हें बताया गया। फिर राजारानी दोनों आचार्यश्री के दर्शनार्थ गये। आचार्यश्रीने उपदेश देते वक्त उन दो उंगलियों के कुतूहल का खुलासा किया। वह दो उंगली प्रश्न करती है की अगर दो बार संध्या करते हो तो मेरा स्वीकार करना। शिष्यने तीन उंगली बता कर कहा की तीन बार संध्या करते हैं। फिर भी यह दुष्ट दान लेने से हाथ श्याम हो गया। और इसके साथ यज्ञ पर होनेवाली हिंसा को प्रतिबंधित करने का उपदेश दिया।

ओरछा की राजसभा में उनका शास्त्रार्थ घट सरस्वती नामक एक तांत्रिक विद्वान थे सं१५५६मां थे। शास्त्रार्थ के समय वह तांत्रिक दोनों पक्षों के बीच घट स्थापित करता। चर्चा के अंत में घट अपना निर्णय देता। किंतु, ओरछावाली सभा में घट से निर्णय प्राप्त करने के सब प्रयास असफल रहे। जब घट सरस्वतीने उसे एकांत में ले जा कर कारण पूछा तो जवाब मिला : ''श्रीबल्लभाचार्य वाक्पति हैं। वे मेरे स्वामी हैं। उनके विरुध्ध में तुम्हारे पक्षमें कैसे निर्णय दे सकता हुं ?''

घटसरस्वतीने अपना पराजय स्वीकार किया। और राजाने आचार्यश्री का उचित सन्मान किया।

इसके बाद अनेक स्थानों में घूमते हुए उन्होंने परिक्रमा विधिवत समाप्त की।

परिक्रमा दरम्यान एक और घटना घटीत हुइ। यात्रामें उन्होंने एक अजगर को चींटीओं द्वारा पीड़ित अवस्थामें देखा। तब उन्होंने अपने कमंडल से उसके पर भगवत्जल की अंजलि का छिटकाव किया। और उसे बचाया। शिष्योंने इस बारे में जानना चाहा। आचार्यश्रीने उनकी शंका का समाधान किया की पूर्वजन्म में यह अजगर एक महंत था। लेकिन वह अपने शिष्यों की सम्पत्ति पर मोजमजाह करता था। शिष्यों के लिये उसने कुछ भी नहीं किया। सो इस जन्म में वह अजगर हो कर पैदा हुआ और शिष्य चींटीके अवतार में उसे काटते रहे।

विश्राम घाट पर दरवाजे से नीकलते वक्त हिन्दुओंकी चोटी कटती थी और ढाढ़ी निकल आती थी। ऐसी एक मान्यता प्रचलित थी। उन्होंने बहुतसे साथीओं के साथ स्नान भी किया और उस दरवाजे से ही निकले। फिर भी कुछ नहीं हुआ। लोग तब भी अकेलेमें उस और जाने से ड्रते थे तब आखिरमें मथुरा दरवाजे पर उन्होंने अपने शिष्यों से कुछ बंधवाया। तब एक और अफवाह प्रचलित हुई की अगर कोइ मुसलमान उस दरवाज़े के नीचे से निकलता है तो उसे चोटी निकल आती है और दाढ़ी गायब हो जाती है।

यह बात दिल्ही दरबार तक पहुंची। बादशाह सिकंदर लोदीको सुन कर ताज्जुब हुआ। उसने सच कया है उसकी तलाश करवाई। अंत में पाया की यह सब अफवाह है। उसने दरवाजे परसे सब संदेहजनक लक्षण तुड़वा दिये। जनता खुश हुई। बादशाह भी आचार्यश्री की शक्तिओं से प्रभावित हुआ। उसने होनहार नामक चित्रकार को आपश्रीका चित्रजी बनाने को भेजा।

चित्रकारने चित्र बनाया। लेकिन वर्ण (रंग) में फर्क आया। एक और चित्र बनाया। उसके भी वही हाल। आखिर उसने थक कर आचार्यश्रीसे अनुरोध किया की उसकी इज्जत बचायें। आचार्यश्रीने तीसरा चित्र बनाने के लिये कहा वह चित्र सर्वश्रेष्ठ बना।

उससे सिंकदर प्रभावित हुआ व अपने शाशनमें ढंढेरा पिटवाया की वैष्णव प्रजा के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय न हो व जुल्म न करें।

आचार्यश्रीकी विद्वता से प्रभावित हो कर श्री व्यासतीर्थने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन श्री महाप्रभुजीने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया। वे द्वारका पहोंचे और गीताजी पर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त किया। फिर बद्रीनाथ यात्रामें साक्षात व्यास भगवानके दर्शन पाये और उनसे कुछ शंकाओं का समाधान भी प्राप्त किया एवं सात्विक शास्त्र चर्चायें हुई।

श्रीमद आचार्यजी जब दुबारा द्वारका पधारे तब गुजरातके मार्गसे पधारे। उस वक्त गुज़रात में महमद बेग़डा का शासन था। उसके राज़में एक कानून था की बादशाह की नज़रके सामने से कोइ पालकीमें गुज़र नहीं सकता। लेकिन तब आचार्यश्री पालकी में बैठ कर ही गुजर रहे थे। बादशाह के महल के करीब आने से पालकी उठानेवालोंने उसे नीचे रख दी और साथी वैष्णवोने भी उन्हें पैदल चलनेका अनुरोध किया। किंतु आचार्यश्रीने उत्तर दिया: " मेरी इच्छासे मैं पालकीमें नहीं बैठा। ठाकोरज़ीने मुझे इस स्थितिमें रखा है। मैं उनसे बड़ी कोइ सत्ता का हुकम नहीं मानता। पालकी उठा कर आगे चलो।" जब महलके छज्जे के नीचे से पालकी गुजर रही थी तब बादशाहके कोइ सरदारने उस और बादशाह का ध्यान खींचा। लेकिन बादशाहने कहा : "यह इन्सान से ज्यादा कोइ उंचे दरज्जेका फरिस्ता लगता है। उसे जाने दो।"

उनके प्रचार प्रवास को और समज़ने के लिये हमें उनके सांसारिक जीवन की बात भी करनी होगी महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी झारखंडसे व्रजमंडलमें श्री गिरिराज पधारे। श्री रामदासजीको सेवा प्रकार बताया जब श्री ठाकोरजी छोटेसे मन्दिरमें बिराजते थे। पश्चात अंबालाके पूर्णमल क्षत्रियको आदेश देकर नया मन्दिर निर्माण करवाया जिसमें बीस वर्ष व्यतीत हुए एवं श्री नाथजी नये मन्दिरमें बिराजे।

(१७) जीवन की वैविध्य लीला

यूं तो श्रीमदाचार्यजी ब्रह्मचर्य के ही आग्रही थे और उनकी इच्छा भी समस्त जीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेकी थी। किंतु, दुबारा जब वे यात्रा पर निकले तब भगवान श्रीविठ्ठलनाथजीने उन्हें पंढरपुरमें विवाह करनेकी आज्ञा दी। श्रीमदाचार्य कुछ असमंजसमें पड़े। लेकिन तब भगवदाज्ञा हुइ: "भक्तिमार्ग के प्रचार के लिये तुम्हारे पीछे किसी उचित उत्तराधिकारीकी ज़रूरत है।"

और जब वे काशी पहुंचे तब वहां उन्होंने विवाह किया। उनके स्वसुर का नाम मधुमंगल अथवा देवव्रत था। उनकी सासका नाम अत्रिम्मा था और धर्मपत्नीका नाम श्रीमहालक्ष्मी। आचार्यश्रीने तीस-बत्तीसकी उम्र में विवाह किया।

विवाह के कुछ वर्षों बाद उनके यहां प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। उनका नाम श्री गोपीनाथजी रखा गया। करीब चार साल बाद द्वितिय पुत्र प्रगट हुए। उनका नाम श्री विठ्ठलनाथजी रखा गया। दोनों ही पुत्र महा विद्वान एवं आचार्य के रूप में विख्यात हैं। यूं भगवदिच्छा थी तो उनके विवाह की सफलता भी प्राप्त हुइ।

श्रीमदाचार्यजी सरल स्वभावके व समदर्शी थे। एक बार जगन्नाथ पुरी में उनकी मुलाकात श्री चैतन्य महाप्रभु से हुइ। अति बहुत प्रेममय वार्तालाप हुआ। मित्रता हुई। उस मिलन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कभीकभी श्रीमदाचार्यजी से मिलने आ जाते। एक बार भोजनादि के बाद श्रीचैतन्य महाप्रभु पधारे। श्रीमदाचार्यजीने श्रीमहालक्ष्मीजी को रसोइ तैयार करनेकी आज्ञा दी। थोडी देर में हो भी गइ। लेकिन पुष्टि मार्ग के समर्पण भावने श्रीमहालक्ष्मीजी को उलझन में डाल दिया। क्योंकि अब श्री ठाकोरजी के अनोसर का प्रश्न उपस्थित हुआ। जहां तक श्री ठाकोरजीको समर्पित न हो तब तक परोसा नही जाय।

इसी लिये परोसने में विलम्ब हो रहा था। कारण श्रीमदाचार्यजी समजे। उन्होंने आज्ञा दी की खानपान परोस कर श्री चैतन्य देव के आगे रख दिया जाय। उनके हृदय में श्रीकृष्ण प्रभु विराजमान हैं। और वे ही प्रथम ग्रहण करेंगे। इस तरह उलझन टल गयी। तब जो भी वैष्णव वहां उपस्थित थे उनकी समजमें श्री चैतन्य महाप्रभुजी का महत्व आया। वे समजे की श्री चैतन्य एक अलौकिक पुरुष है।

विवाह होने के बाद आपश्रीने अपनी तीनों यात्राएं पूर्ण की। अब, आचार्यश्री ने किसी एक स्थान पर स्थायी हो कर गृहस्थाश्रम निभानेकी ज़रुरत के बारे में विचार किया। और प्रयाग के पास अड़ेल गांव के पास उन्होंने निवास किया। किंतु कुछ समय के बाद अड़ेल छोड कर काशीके पास चरणाट नामक गांव में निवास किया। उस गांवमें आने के बाद तो काशी से कितने ही विद्वान शास्त्रार्थ करनेके लिये उनके पास आने लगे। कुछ दिनों के बाद चरणाट छोड कर वे काशी चले गये। अब और भी पंड़ित लोग शास्त्रार्थ के लिये उनके पास आने लगे। लेकिन अब अगर कोई महाविद्वान आता था तो उसके साथ शास्त्रार्थ वे खुद करते थे। वर्ना शिष्यों को सुपुर्द कर देते थे।

उसके बाद प्रति दिन वैदिक सिद्धांत पर एक लेख लिखकर श्री काशी विश्वेश्वर के दरवाजे पर लटका देते थे। उसके कारण उपेन्द्राश्रम संन्यासी जैसे विद्वान के साथ कई तक विवाद चला। अंतमें, विजय श्रीमदाचार्यजी की हुइ। उनके यह लेख पीछे से संग्रह के रूप में "पत्रावलम्बन" नाम से प्रकाशित हुए।

अपनी यात्राओं के दरम्यान कितने स्थानों में उन्होंने श्री भागवत सप्ताह पारायण भी किये। इन स्थानो में आपकी बैठक मानी हैं। एसी बैठकें सब मिलाकर ८४ है। आचार्यश्रीने ८१ प्रकार की भक्ति भी स्थापित की। श्रीमदाचार्यके श्रेष्ठ ८४ सेवक थे। प्रश्न यह उठता है की तब फिर उस युगमें बहुत सुंदर प्रचार हुआ ऐसा कैसे कहा जा सकता है?

हकीकत यह है की उनके ८४ महाशिष्य थे। श्री गोकुलनाथजीने इन ८४ को सेवक प्रधान कहे हैं। उनमें भी जिनकी उत्तमता विशेष प्रमाणित हुइ हो वैसे अष्टशिष्य है। इन अष्टसखामें श्रीविठ्ठलनाथजी सेवक भी थे। गंगासागर संगम पर श्रीमदाचार्यजी को अपनी जीवन लीला समाप्त करनेकी आज्ञा प्रथम बार मिली। दुबारा मधुवन में मिली। फिर भी, उनकी प्रवृत्ति चलती रही। कारण यह था की श्रीसुबोधिनीजी ग्रंथ के चतुर्थ से नवम स्कंध अभी संपूर्ण नहीं हो पाये थे। जब आज्ञा तृतिय बार हुइ तब सन्यास अब ले लेना चाहिये यूं मान कर उन्होंने श्रीहालक्ष्मीजी से अनुमति मांगी। किंतु यह तत्कालीन न मिलने से फिर कुछ समयके लिये बात स्थगित हो गयी। किंतु, यह भगवदाज्ञा थी। सो आखिरकार उसके लिये भी अनुकूलता मिल ही गइ।

एक बार श्रीमदाचार्यश्री अड़ेलमें अपने स्थान में बिराजे थे। तब घरके चारों ओर अचानक आग लगी। श्री महालक्ष्मीजीने उन्हें घर छोड कर बाहर नीकलनेका अनुरोध किया। इस बात को उन्होंने पत्नीकी ओर से सन्यास ग्रहण करने का अनुरोध मान लिया। और वे प्रयाग पहुंच गये। काशी में वे हनुमान घाट पर निवास करने लगे। वहां एक माह से ज्यादा समय योग का आचरण किया।

जब नित्यलीला प्रवेश का समय नजदीक आया तब श्रीमद आचार्यश्रीके दोनो पुत्र व अन्य कुछ शिष्य काशी आये। आपके दर्शन करके आपसे उपदेश मांगा। उस वक्त आचार्यश्रीने मौन व्रत धारण किया हुआ था। अंत में उन्होंने ३$^{१/२}$ श्लोक लिख कर दिये। जो आगे चल कर शिक्षाश्लोक के नाम से प्रचलित हुए। उसमें विशेष उपदेश यह था की चित्त में सदा भगवान श्रीकृष्ण ही रखो। अगर उसमें क्षति हुइ तो दुर्भाग्य में फंसने का भय रहता है। गोपीओं के परम प्रिय श्री कृष्णचन्द्र लौकिक एवं पारलौकिक सब पदार्थ देनेवाले हैं। प्रभु खुद लौकिक नहीं है और लौकिक आचारों को माननेवाले भी नहीं है। फिर उस श्लोक में कहा की भगवान श्रीकृष्ण स्वयं प्रगट ही हुए हैं। फिर उसमें इस अर्थवाले १$^{१/२}$ श्लोक और जोड़ा। और सान्त्वना के रूप में कहा की 'मेरे बारे में आप सब का विश्वास हो तो शोक करने जैसा कुछ भी नहीं है'। अन्य स्वरूप का त्याग करके अपने मूल स्वरूपमें वापिस लौटना वही है मुक्ति। इस तरह 'शिक्षाश्लोक' के पांच श्लोक पूरे हुए।

श्रीमद बल्लभाचार्यजी मध्याह्न के वक्त गंगाजी में पधारे और वहीं खड़े खड़े श्रीकृष्णध्यान लीन हो गये। कुछ समय बाद उन्होंने जल समाधि ली। तब ही गंगाजी के प्रवाह से अग्निकी राशि प्रदीप्त हुइ। जो उपर उठी और उपर जाती हुई अदृश्य हो गइ। इस तरह श्रीमद आचार्यश्रीने इहलोक छोड़ कर भगवान की नित्य लीला में प्रवेश किया। संवत १५८७ की आषाढ सुदि बीज (बुदि) पर त्रीज का वह दिन था। इसे 'आसुरव्यामोह लीला' कहतें हैं।

श्रीमदाचार्यश्री का साहित्य, उनके वंश का विहंगावलोकन तथा उनके जीवन की समाज पर असर ये महत्वपूर्ण विषय हैं। इन पर विचार करना आवश्यक है।

(१८) साहित्यजीवन-नयी फसल

अपने सिद्धांतका प्रचार करने के लिये हर मत प्रवर्तक को आनुषंगिक साहित्यका सर्जन करना पड़ता है। इस नियमानुसार हमारे आद्य पुरुषने भी बहुत ग्रंथ साहित्य हमें दिया है। यह साहित्य सरल भी है, सूत्रबद्ध है और गहन भी।

पुष्टि मार्गका आधार वेदान्त के सिद्धांतो पर है। उन पर ही श्रीमद आचार्यश्रीने भाष्यों की रचना की है। उच्च कक्षा के धार्मिक साहित्य पर उन्होंने टीकाएं भी लिखी हैं। उन ग्रंथो में उन्होंने धर्मोंका आध्यात्मिक स्वरूप समझाया है।

श्रीमद आचार्यश्री के अपने ग्रंथो की संख्या के बारे में भिन्न भिन्न मत प्रवर्तमान हैं। 'यदुनाथदिग्विजय' अनुसार यह संख्या ८४ जितनी है। पंड़ित गट्टुलालजी 'तत्वार्थदीपनिबंध' पर लिखी गयी टीका में यह संख्या ३५ की गिनाते हैं। बल्लभ चरित्रके रचयिता लल्लुभाइ प्राणवल्लभदास अनुसार संख्या २९की है। संख्या के विषय में काफि मतभेद है।

श्रीमद आचार्यश्री वेद, गीताजी, व्याससूत्र और श्रीमद भागवतको प्रमुख प्रमाण ग्रंथ मानते है। इन चारों को 'प्रस्थानचतुष्टय' के नाम से जाने जाते हैं। अपने सिद्धांतो एवं सूत्रों को 'ब्रह्मवाद' किंवा शुद्धाद्वैत को ग्रंथस्थ रूपमें आचार्यश्रीने अंकित किये है।

वैष्णव समाजमे 'षोडशग्रंथो' के नाम से यह प्रचलित है। उनमें समाविष्ट सोलह ग्रंथ है : यमुनाष्टक, बालबोध, सिद्धांत मुक्तावलि, पुष्टि प्रवाह मर्यादाभेद, सिद्धांत रहस्य, नवरत्न, अत: करण प्रबोध, विवेकधैर्याश्रय, कृष्णाश्रय, चतुश्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, पंचपद्य, सन्यासनिर्णय, निरोधलक्षण, और सेवाफल।

(१) यमुनाष्टक-श्रीमद आचार्यश्रीने इस ग्रंथ द्वारा नौ श्लोकमें श्रीयमुनाजीकी विशेषता, शक्ति का वर्णन, संप्रदायमें उनका स्थान इत्यादि दिखाया है। इस पर श्री गुंसाइजी, श्रीहरिरायजी, श्रीपुरुषोत्तम महाराजने टीकाएं लिखी है।

(२) बालबोध-श्रीमद आचार्यश्रीने १९ श्लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मो इन अुन्नसचारों पुरुषार्थ को उनकी ऐहिक एवं पारलौकिक दृष्टि से समजाये हैं। अन्याश्रय त्याग का भी उपदेश दिया है। श्री पुरुषोत्तमजी और श्री देवकीनंदजी महराजने इस ग्रंथ पर टीकाएं लिखी हैं।

(३) सिद्धांत मुक्तावलि-एकीस्स श्लोको में मानसी सेवा, दीनता तथा विरहमय हालात इत्यादिका सदृश वर्णन करके सत्, चित् एवं आनंद रूप श्री कृष्ण सेवा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। साथ ही भक्ति मार्गका दिव्य दर्शन भी कराया गया है। श्री विठ्ठलनाथजी, श्री कल्याणरायजी, श्रीव्रजनाथजी, श्री द्वारकेशजी, श्री हरीरायजी इत्यादि आचार्य लोग और श्रीलालु भट्ट जी इत्यादि की मिलाकर इस ग्रंथ पर कुल नौ टीकाएं लिखी गयी हैं।

(४) पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेद-साड़े पच्चिस श्लोको में लिखे गये इस ग्रंथ में जीवों की पुष्टि, मर्यादा, प्रवाही, शुद्ध पुष्टि, पुष्टि मिश्र पुष्टि, मर्यादा मिश्र पुष्टि, प्रवाह मिश्र पुष्टि, मर्यादा जीव, सहज आसुर, अज्ञ आसुर इत्यादि विविध भेद दिखाये गये हैं। और पुष्टि मार्गका समर्थन किया है। श्री पुरुषोत्तमजी, श्रीरघुनाथजी, श्रीकल्याणरायजी इत्यादि आचार्योने टीकाएं लिखी हैं।

(५) सिद्धांतरहस्य-साड़े आठ श्लोकोवाला यह ग्रंथ ब्रह्मसंबंध, सेवाके संदर्भमें चित्त, असमर्पित त्याग, निवेदन भाव इत्यादि सिद्धांतो का रहस्य प्रगट किया है। श्री पुरुषोत्तमजी और श्री गोकुलनाथजी महाराजने टीकायें लिखी है।

(६) नवरत्न-नौ श्लोक में सेवा में चित्त बनाये रखने में आनेवाली विपदाएं और उनके निवारण के बारे में तथा अष्टाक्षर मंत्र के सिद्धांत के विषय में अवलोकन किया है। टीकायें पांच विद्वानोने लिखी है : श्री गुसांइजी, श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीमुरलीधरजी, श्रीवल्लभजी और श्री लालु भट्टजी।

(७) अंत: करण प्रबोध-साडेदश श्लोकोंवाला यह ग्रंथ अपने मनको सावधान करके चिंतायें छोडने का उपदेश देता है। परब्रह्म निर्दोष तत्व तो श्रीकृष्ण ही है यह समजाता हैं एवं स्वामी और सेवक के बीच का सम्बन्ध बताता है। श्री गोकुलनाथजी, श्रीपुरुषोत्तमजी, श्री हीरायजीने टीकायें लिखी है।

(८) विवेकधैर्याश्रय-सतरह श्लोको में विवेक धैर्य एवं आश्रय का वर्णन दिया है, अहम। त्याग का उपदेश भी है। किसी भी परिस्थितिमें श्री हरिका अनन्य शरण वही कर्तव्य है। अविश्वास और अन्याश्रय का त्याग करके लौकिक काम बिना मोहमाया करने का उपदेश है। श्री पुरुषोत्तमजी, श्री गोपेश्वरजी, श्री व्रजरायजी की लिखी हुइ टीकायें हैं।

(९) श्रीकृष्णाश्रय-ग्यारह श्लोको वाले इस ग्रंथ में भगवान श्रीकृष्ण में आश्रयय धृढ सिद्ध हो इस हेतुसे उपदेश है। एक से छ श्लोको में यह उपदेश है की साधन के आधार पर प्रभु प्राप्ति मिलनी सुलभ नहीं है। वह तो सिर्फ प्रभु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। सातवे श्लोकमें नि:साधन भक्तो परभी प्रभु कृपा की बात है। और आठवे आनंद की स्थिति दिखाकर श्रीकृष्ण महात्म्य का वर्णन है। नव मे में दीनता का और दशवे में आश्रय करने का उपदेश है। ग्यारहवे श्लोक में प्रभु सानिद्यमें स्तोत्र पाठकरने से श्रीकृष्णमें सुदृढ आस्ता पैदा होने का उपदेश है। इस महत्वपूर्ण स्तोत्रका वैष्णवो में दर्शन के समय पर पाठ होता है। श्रीकल्याणरायजी और श्रीपुररुषोत्तमजीने टीकाये लिखी हैं।

(१०) चतु : श्लोकी चार श्लोको में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष समजाये गये है। भक्त के इन चारों पुरुषार्थ प्रभु स्वरूप ही है। मुख्य उपदेश यही है की प्रभुसेवा अनन्य भाव सेहो। श्री व्रजरायजीने 'भावरसदीपिका' नामक टीका लिखी है। श्रीपुरुषोत्तमजी और श्री हरिरायजीने भी टीकायें लिखी है।

(११) भक्तिवर्धिनी-दश श्लोकोमें भक्ति की व्याख्या और उसकी वृद्धि के उपाय दिखाये है। साथ ही, सेवा और कथा में आसक्ति, स्नेह इत्यादि की बातें कही है। श्रीगोकुलनाथजी और श्रीपुरुषोत्तम महाराजीनीने टीकायें लिखी है।

(१२) जलभेद-एक्कीस श्लोकोवाले इस ग्रंथमें श्रीमहाप्रभुजीने वक्ता के विविध भेद समजाये है। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ संग के प्रकार भी समजाये हैं। जिनके संग से भाव में वृद्धि हो वैसे वैष्णव विद्वानों का संग करने का उपदेश है। श्री पुरुषोत्तमजी, श्रीकल्याणरायजी, श्रीवल्लभजी और बालकृष्णजीने टीकायें लिखी है।

(१३) पंचपद्यानि-पांचश्लोकोवाले इस ग्रंथमें श्रोताओं के भेद दर्शाये गये है। पहले श्लोकमें पुष्टि श्रोता के लक्षण, दूसरे में मध्यम श्रोताके, तीसरे और चौथे में मर्यादा स्थितिवाले हीन श्रोता, पांचवे में मर्यादा उत्तम श्रोताओंके वर्णन है। श्री पुरुषोत्तमजी और श्रीहरिरायजीकी टीकायें है।

(१४) संन्यासनिर्णय-बाइसश्लोको में संन्यास संबंधी विस्तृत वर्णन दिया है। कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों के विषयमें विस्तृत ब्योरा दिया है। भक्तिमार्गीय संन्यास के दृष्टान्त भी दिये है। श्री पुरुषोत्तमजी और श्री गोकुलनाथजी महाराजने टीकायें लिखी है।

(१५) निरोधलक्षण-बीस, श्लोक के इस ग्रंथमें निरोध की व्याख्या, निरोध के प्रकार और उसके उपायका वर्णन है। निरोध के लक्षण भी बताये है। सुबोधिनीजी के दशम स्कंध में स्वरूप लक्षण का वर्णन है; इस ग्रंथ में निरोध के अनुभव एवं परिणाम का वर्णन है श्रीपुरुषोत्तमजी महराज इत्यादि ने इस ग्रंथ पर टीका लिखी है।

(१६) सेवाफल-साडे सात श्लोको में सेवा की तीन फलों का वर्णन है। सब से उत्तम है मानसी सेवा। इस सेवा करनेवाले को अलौकिक सामर्थ्य, सायुज्य और सेवोपयोगी देह तीनो प्राप्त होते हैं। उद्वेग, प्रतिबंध और भोग के प्रकार समजाये है। उद्वेग का त्याग करके प्रभु संबंध ग्रहण करना। वैराग्यपूर्वक लौकिक भोग छोड़ देना और प्रभुकी प्रासादी रूप अलौकिक भोग रखना। जीव द्वारा बनाये गये प्रतिबंध छोड़ देना और प्रभु जो प्रतिबंध लगाये उन्हें बरदाश्त करना। इन बातों का उपदेश है। इस ग्रंथ पर श्रीमहाप्रभुजीने खुद टीका लिखी है। श्रीहरीरायजी, श्रीपुरुषोत्तमजी, श्रीलालु भट्टजी, जयगोपाल भट्टजी इत्यादि द्वारा लिखी हुई टीकायें भी है।

षोडश ग्रन्थोमें यह आखिरी ग्रंथ है। षोड़शग्रंथोमें सब मिला कर दो सो साडे एक्कीस श्लोक हैं। सांप्रदायिक जगतमें षोडश ग्रंथ एवं 'श्री सुबोधिनीजी' और 'श्रीअणुभाष्य' यह ग्रंथ बहुत ही लोकप्रिय है। 'श्री सुबोधिनीजी' श्रीमद आचार्यश्रीने श्रीमद भागवत पर गंभीर टीकायें लिखी है। श्री अणुभाष्य में श्रीव्याससूत्र ब्रह्म सूत्र की मीमांसा हैं। श्री 'अणुभाष्य' तो कुछ विद्यापीठो में एम. ए के अभ्यासक्रम में पाठय पुस्तक के रूप में भी स्वकृत ग्रंथ है। इनके सिवा 'पत्रावलम्बन' तथा जैमिनि सूत्र मीमांसा, गायत्रीभाष्य, भगत्पीठिका, त्वार्थदीपनिबन्ध इत्यादि बहुत ग्रंथोकी श्रीमद आचार्यश्रीने रचना की है।

(१९) संप्रदाय के विकास स्तंभ

श्रीमद आचार्यश्रीके प्राकटय के आज ५२७ साल बीते है। आपके दो सुपुत्र प्रगट हुए श्री गोपीनाथजी और श्रीविठ्ठलनाथजी। श्री गोपीनाथजी प्रकट हुए संवत १५६७ में और श्री विठ्ठलनाथजी १५७२ में। श्रीमदाचार्यश्री जब अड़ेलमें विराजते थे तबको श्री गोपीनाथजीका प्राकटय है। संवत १५७३ में उनके उपवीत संस्कार हुए। और उसके बाद सांप्रदायिक सिद्धांतो के ग्रंथ साहित्यका अध्ययन, मनन व परिशीलन उन्होंने पूर्ण आस्थाके साथ किया।

दुर्भाग्यसे वे इस सृष्टि पर अल्प समय के लिये ही रहो वे गृहस्थाश्रमी हुए संवत १५८८ में। उनके वहां एक कुमार-श्री पुरुषोत्तमजी-का प्राकटय हुआ। फिर श्री सत्यभामा बेटीजी और श्री लक्ष्मी बेटीजी प्रकट हुए। श्रीमदाचार्यश्रीके नित्यलीला प्रवेश के बाढ। परंपरा अनुसार उन्होंने सांप्रदायिक गददी प्राप्त की।

उन दिनों श्री कृष्णदास नामक एक अधिकारी श्रीनाथजी के मंदिर का कार्यभार संभालते थे। तब बंगाली वैष्णवोने वहां अव्यवस्था का माहोल खड़ा किया। द्रव्य का भी दुर्व्यय होने लगा। तब नीचेवाली झोंपडीओ में अचानक आग लग गई और बंगाली सब

भाग गये। और श्रीकृष्णदासजीने मंदिर पर चौकी बैठा दी। और साचोरा ब्राह्मणको सेवा की जिम्मेदारी सोंपी [illegible] व पुष्टिमार्गीय मन्दिरोमें साचोरा, औदीच्य व गिरनारा विप्रोंकी श्रीकी सेवामें नियुक्ति होती है। श्री गोपीनाथजीने भी प्रवास किया था। तथा गुजरात, सिंध, द्वारका इत्यादि स्थानों से करीब एक लाख रुपये एकत्रित किये। और श्रीजीकी सेवा में अर्पण कीया।

उन्होंने संवत १५९५ में जगदीश पुरीमें श्रीभगवान के सानिध्यमें नित्यलीला प्रवेश कीया। उनके सुपुत्र पुरुषोत्तमजी भी बाल्य वयमें ही नित्यलीला प्रवेश कीया था। अब श्री विठ्ठलनाथजी आचार्य पद पर आरूठ हुए। यह बात श्रीगोपीनाथजी की धर्मपत्नी को पसंद न आई। वे बहुत नाराज हुई और उपलब्ध ग्रंथ साहित्य इत्यादि लेकर वे दक्षिण की ओर चली गयी। श्री गोपीनाथजी लिखित एक ग्रंथ 'साधन दीपीका'' आज उपलब्ध है।

श्रीविठ्ठलनाथजीका प्रागटय है संवत १५७२ का। उपवीत संस्कार विधि इत्यादि हो जाने के बाद माधवानंद नामक संन्यासी के पास अभ्यास अध्ययन के लिये वे काशी गये। थोडे ही समय में उन्होंने प्राय:सभी शास्त्रोंका अभ्यास कीया। संवत १५८९ में उनका विवाह विश्वनाथ भट्ट की कन्या रुकमिनी के साथ हुआ।

वे स्वभाव से कुछ आनन्दी प्रकृति के थे। कलाके उपासक, शृंगार के शोखीन और संगीत के हिमायती विद्वान थे। ये आचार्यश्रीने भगवान के सुख, शांति, विश्रांति और अन्य प्रवृत्तिओंकी भी कल्पना की। आज हमारे संप्रदाय में जो भी प्रदर्शनात्मक सेवा प्रकारका अनुसरण होता है उसके प्रणेता थे श्री गुंसाइजी। आज कंठ संगीत-वाद्य संगीत इत्यादि कलाओं में हमारे संप्रदायकी सिद्धि काफि उंची मानी जाती है।

उन दिनो दील्हीमें मुसलमान शहेनशाहत थी। फिर भी, हमारे संप्रदायकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रही, हिंदुत्वकी भावना सुरक्षित रही, यह एक बड़ी गौरवपूर्ण बात थी। आचार्यश्रीको 'गुसांइजी' का सम्मान दिया गया।

उन्हें अपनी प्रथम पत्नी से दश संतान थे : छ पुत्र और चार पुत्री। उनकी प्रथम पत्नीका नित्यलीला प्रवेश होने के बाद संवंत १६२४ में उन्होंने श्रीपद्मावतीजीके साथ द्वितीय विवाह किया। इस पत्नी से भी उन्हें एक पुत्र हुआ। उन्होंने प्रवास भी बहुत किया। छ बार वे गुजरात पधारे थे। उन्होंने सांप्रदायिक साहित्य भी काफी अच्छी संख्या में दिया है। सब मिलाकर छोटे-बड़े करीब पचास जितने ग्रंथ उन्होंने भारतकी जनता को दिये हैं। आयुके उत्तरार्द्धमें वे प्राय: मथुरामें रोती णी दुर्गावती द्वारा निर्मित सतधरा महलमें विराजते थे।

अपना जीवन कार्य अब समाप्त हुआ है यूं मान कर श्रीनाथजीका राजभोग पर्यन्त सेवा करके वे अपने गले की माला चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथजी को पहनाकर गिरिराज़की एक कंधरामें चले गये। जब उनके ज्येष्ट पुत्र श्रीगिरिधरजीने यह सुना तो वे तुरन्त दौडे चले आये और पितृचरणका वस्त्र खींचा। तब उसी वस्त्र से पिता की उत्तरक्रिया करने की आज्ञा देकर श्रीविठ्ठलनाथजीने नित्यलीला प्रवेश कीया संवंत १६४२ ।

श्रीमदाचार्यजीने पुष्टि मार्ग की स्थापना की। तो श्रीविठ्ठलनाथजी ने उसके विकासमें काफी योगदान दिया। संप्रदायकी प्रवृत्तियां उनके समयकाल दरम्यान बहुत विकसित हुइ। श्रीमद विठ्ठलेशजीके नित्यलीलाप्रवेश के बाद संपुर्ण कौटुम्बिक व्यवहार संभालने की जिम्मेदारी चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथजी महाराज ने वहन किया आपश्री सेवा परायण थे। भारतभर में प्रवास करके उन्होंने १३ जितनी बैठको की स्थापना की। करीब बारह ग्रंथ भी प्रकाशित किये।

संप्रदायके एक और बेज़ोड विकास स्तंभ थे, श्रीहरीरायजी महाराज वे अद्वितीय विद्वान थे और उन्होंने छोटे-बड़े करीब एक हजार जितने ग्रंथ लिखे है। उन्होंने भी प्रचार प्रवास किये थे और सात स्थानों में बैठकें है, भक्तोमें भी सेवा की दृष्टि से श्रीमहाप्रभुजीके चार परम भक्त हुए है : सूरदासजी, परमानंददासजी, कुंभनदासजी और कृष्णदासजी और चार प्रमुख सेवक भी थे : नन्ददासजी, चतुर्भुजदासजी, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी।

विट्ठलनाथजी के

(२०) संप्रदायके प्रकाश पुंज

संक्रान्तिकाल में यू तो घर्षण होता ही है। लेकिन उस घर्षण से जब कीसी नयी राह दिखानेवाला कोइ महा-आत्मा प्रगट होता है, तो वह निश्चित ही सबके लिये पूजनीय हो जाता है। उस महात्मा का योगदान उन्होंने स्थापित किये हुए संप्रदाय एवं उनके अनुयायीओं की प्रवृत्तियां और उसके फलादि से प्रतिपादित होता है।

हमारे आद्यपुरुष के प्रवृत्ति जीवनका प्रमुख लक्षण है, प्रवास एवं सत्शास्त्रार्थ। जहांजहां वे गये और कुछ समय तक वाचन, मनन किया और उपदेश दिया, उन स्थानो पर आज भी उनके स्मृतिचिह्न विद्यमान हैं। वे हमारे संप्रदाय के लिये पवित्र स्थल हैं। वे स्थान हमारे आद्यपुरुषकी बैठकों के नाम से विख्यात हैं। वे जहां भी जाते अपना मुकाम गांव से बाहर रखते। और फिर श्रीमद भागवत सप्ताह पारायण करते।

उनस्थानों में मंदिरो की तरह ही सर्व प्रकारके सेवाभोग इत्यादि होते हैं। आज भी गोस्वामी आचार्यगण जब इन गांवोमें जाते हैं तब विशेष रूप से सेवा करते हैं और भोग इत्यादि धराते हैं। अन्य वैष्णवजन भी यूंही करते हैं।

श्रीमहाप्रभुजी के गोकुल निवास दरम्यान सिकंदर लोदी का शासन काल था। श्री महाप्रभुजीके दर्शनार्थ बादशाह स्वयं आये थे। और उनकी एक चित्र छवि अंकित करवाने के लिये अनुमति भी मांगी थी। वह चित्र बादशाहने अपने कक्षमें रखा था। बाद में, वह चित्र सम्राट अकबर के पास आया।

बादशाह अकबर श्री महाप्रभुजी के द्वितीय पुत्र श्री विठ्ठलनाथजी का भक्त था। वह बंडी पहनता था और तिलक भी करता था। उस पहनावे में उसका चित्र भी है। श्री महाप्रभुजीकी छवि बाद में जहांगीर और शाहजहां के पास गइ। आखिर में, बादशाह शाहजहांने किसनगढ़के महाराजा रुपासिंह के मांगने पर उन्हें भेंट दे दिया। आज भी वहां का राज कुटुम्ब श्री महाप्रभुजीकी भक्ति भावपूर्वक सेवा करता है।

श्रीमद विठ्ठलनाथजी सात उत्तराधिकारीओं के शिर सात स्वरूपों की सेवा करनेका आदेश किया। सो आजतक सात पीठोंमें चालु है।

श्रीमदाचार्यनीके जी भ्राता-भगिनी के बारे में कुछ जानकारी प्रस्तुत है। उनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम नारायण भट्ट था। सन्यास ग्रहण करने के बाद उनका नाम रखा गया केशवपुरी। अनुज भ्राता का नाम रामचंद्र भट्ट था। उनकी दोनों भगिनीओं का नाम था, सरस्वती और सुभद्रा नारायण भट्ट गृहस्थी न रहे और गोडिया वैष्णव सन्यासी हो गये, रामचंद्र भट्ट बहुत बड़े विद्वान थे, वे संस्कृत साहित्यके अच्छे लेखक भी थे।

पुष्टि मार्ग के संस्थापक श्रीमहाप्रभुजीको कोटि कोटि वंदन ।

संक्षिप्त ज़ीवनी

निरंज़न शास्त्री उमरेठवाला

ज़न्म : नवम्बर १४, १९३६.
ज्ञाति : कश्मीरीया-मालवीय (श्रीगोड विप्र)
ज़न्मस्थान : पेटलाद (गुजरात - भारत)

शिक्षा : पुराणाचार्य । लब्ध सुवर्ण पदक, शुद्धाद्वैत वाचस्पति (बनारस) । व्याख्यान वाचस्पति, भागवत वाचस्पति, शुद्धाद्वैत दिवाकर इत्यादि उपाधियां प्राप्त हुई हैं और अनेक संस्थानो द्वारा उन्हें मान्यता प्रदान की गयी है । इ.स. २००१ के जनवरी माह में "ब्रह्मर्षिरत्न" की उपाधि प्राप्त हुई । सुवर्ण चंद्रक एवं रजत चंद्रके भी अनेक संस्थानो की ओर से प्राप्त हुए हैं ।

विद्यागुरुगण : पंडित पंचानन गो.वा.पूज्यश्री बदरीनाथ शास्त्रीजी, वडोदरा निवासी; गो.ब्रा.पं.श्री मन्छाराम शास्त्रीजी; गो.वा. श्री कृष्णमाधव झा; गो. वा. श्री गौरीनाथ शुक्ल; गो.वा.श्री.पी.पी. शेठ; गो.वा. श्री कृष्णराम भट्ट; पं.श्री नर्मदाशंकर शास्त्रीजी ब्रह्मपुरी, मुंबई; गो.वा. श्री तुलेजाशंकर शास्त्रीजी इत्यादि।

ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा : यह परम्परा रही है कि यह परिवार श्री गुसांईजी के समय से पंचम घर के सेवक हैं । ८वे साल में यज्ञोपबीत पर दीक्षागुरु नि.ली.गो. श्री १०८ श्री गोबिन्दलालजी महाराज कामवनवालों से "ब्रह्मसंबंध" दीक्षा प्राप्त हुई है ।

यात्राएं : भारत के बहुत से प्रदेश, यु.के., यु.एस.ए, दक्षिण आफ्रिका, मोरीश्यिस, नेपाल, दुबई, कनेडा, न्युझीलेंड, ओस्ट्रेलीया, होंगकोंग इत्यादि देशों की कई बार यात्राएं की है । करीब हर देशमें टी.वी. व रेडियो पर लाइव इन्टरव्यु दिये हैं । श्रीमद भागवत एवं अन्य ग्रन्थों के करीब एक हजार जितने सप्ताह ज्ञानसत्र आपश्रीके प्रधान व्यासपद से संपन्न हुए है।

पत्रकारिता एवं सेवायें : पत्रकारिता के क्षेत्र में भी काफी अनुभव है । गुजरात समाचार के मम्बई संस्करण में 'धर्मलोक' शिर्षक कालम; मुंबाई के सायंकालीन दैनिक पत्र मध्यांतर में 'महाप्रभू श्री वल्लभाचार्य' कालम; गुजराती दैनिक, 'जनशक्ति', के मुंबाई संस्करण में 'विश्वमंगल' कालम भी बरसों तक लिखी । एक और गुजराती दैनिक 'मुम्बई समाचार,' में लेख प्रकाशित होते रहे । आ.रा.पु. वैष्णव परिषद के पाक्षिक, 'श्री वल्लभ संदेश' के आद्य तंत्री व सम्पादक भी रहे । इनके अतिरिक्त बृहन्मुम्बापुरी संस्कृत विद्त्सभा के मंत्री का कार्यभार भी संभाला । और आ.रा.पु.वै. परिषद के केन्द्रिय मंत्री एवं महाराष्ट्र प्रदेश समिति के प्रचाराध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष भी थे ।